५-श्रीरामानन्दवेदान्तमालायाः पञ्चमं पुष्पम् ।

आनन्दभाष्यकारश्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।

विजयमालाख्यव्याख्यया समलङ्कृतो

भक्तिवादः

रचयिता

वेदान्तपीठाचार्यः स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यः

१००० प्रति　　　　सं. २०२१ वि०

५-श्रीरामानन्दवेदान्तमालायाः पञ्चमं पुष्पम् ।

आनन्दभाष्यकार श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।

विजयमालाख्यव्याख्यया समलङ्कृतो

भक्तिवादः

रचयिता

वेदान्तपीठाचार्यः स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यः

नमो भक्तकल्पद्रुमाय भगवते श्रीरामाय ।

आनन्दभाष्यकाराय भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।

प्रस्तावना

घटीचक्र—न्यायसे अनादिकालसे संसृतिचक्रमें फँसा हुआ अपने हीं किए हुए कर्मोंके फलस्वरूप दैहिक दैविक तथा भौतिक दुःखों को भोगता हुआ जीव जब त्रिविधतापोंसे छूटनेके उपायको न पाकर अत्यन्त व्याकुलता से किंकर्त्तव्यविमूढ हो शिर पर हाथ रख-कर बैठ जाता है तब "एवं संसृतिचक्रस्थे भ्राम्यमाणे स्वकर्मभिः। जीवे दुःखाकुले विष्णोः कृपा काऽप्युपजायते ॥" इस शास्त्रीयवचनानु-सार भगवानके हृदयमें एक अलौकिक कृपा उत्पन्न होती है। तब भगवान् दुखी और किंकर्त्तव्यविमूढ़ जीवपर कृपादृष्टि करते हैं। उसके प्रभावसे वह जीव तमोगुणी और रजोगुणी वृत्तियों से निवृत्त होकर परमसात्त्विक बन जाता है और आपातरमणीय संसारिक पदार्थोंसे वैराग्यको प्राप्त हो कर मुमुक्षु बन जाता है। शास्त्र में कहा है कि—

"परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्"

"जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः।
सात्त्विकः स तु विज्ञेयः स वै मोक्षार्थचिन्तकः॥"

भगवान्की कृपासे उस सात्विक मुमुक्षु जीवकी दृष्टि 'सा विद्या या विमुक्तये' 'अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते' 'नायमात्मा प्रवच-नेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन' "न साधयति मां योगो न

सांदयं धर्म उद्धव ! न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥"
"भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया" इत्यादि भक्ति द्वारा मुक्ति-प्राप्तिके प्रतिपादक शास्त्रीय वचनों पर पड़ती है। तदनन्तर वह जीव 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्' इस श्रुतिके विधान्के अनुसार परमकृपालु पूज्य श्रीगुरुदेवकी शरणागतिका आश्रय लेकर भगवद्भक्तिको प्राप्त करता है और उसके द्वारा समस्त कर्मबन्धनोंसे छूटकर अक्षय और परमसुखमय भगवदनुभवरूप मोक्षको प्राप्त करता है।

संसाररूप बन्धनसे छुड़ाकर परमपुरुषार्थ मोक्षको प्रदान करनेवाली भगवद्भक्तिके विषयके एक अकाट्य प्रबन्ध की रचना करने का विचार मुझे बहुत दिनोंसे था। यद्यपि भगवान् श्रीपुरुषोत्तमाचार्य जी बोधायन द्वारा श्रीबोधायनवृत्तिमें कथित 'साधनसप्तक' महर्षि श्रीबोधायन जी के शिष्यवर्य जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्यजी द्वारा विरचित 'साधनदीपिका' ज. गु. श्रीपूर्णानन्दाचार्यकृत 'इज्यानवरत्न' तथा जगद्गुरु श्रीसहजरामाचार्य जी महामुनीन्द्र द्वारा रचित 'श्रीरामोपासनपञ्चक' नामक चार साम्प्रदायिक भक्तिविषयक प्रबन्ध इस समय उपब्ध हैं, परन्तु वे अति सूक्ष्म हैं, अतः उनके द्वारा जिज्ञासुओं को पूर्ण लाभ नहीं हो सकता है। अतः उक्त पूर्वाचार्यकृत निबन्धोंका तथा श्रीमान् शाण्डिल्य महर्षि प्रणीत 'भक्तिमीमांसा'का अनुसरण करते हुए मैंने यह 'भक्तिवाद' नामक प्रबन्ध बनाया है। इस ग्रन्थमें भी 'यथा नाम तथा गुणः' इस उक्तिके चरितार्थ करनेके लिए मैंने यथाशक्ति प्रयास किया है। किन्तु 'उसमें मैं कितना सफल हुआ हूँ।' इसका निर्णय तो ईर्ष्यारहित उदार पाठकोंके अधीन है।

२५०

मैंने तो 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' इत्यादि भगवद् वचनानुसार सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम और भगवद्भक्तोंकी अनुपम अनुकम्पासे अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर दिया है। सुखपूर्वक अवगत होनेके लिए 'विजय-माला' नामक व्याख्या भी कर दी है।

श्रीनरसिंहमन्दिर (भण्डेरीपोल) के साकेतवासी महन्त पण्डित श्रीपुरुषोत्तमदासजी महाराज श्रीवैष्णवभूषणकी प्रेरणासे अहमदाबाद (खाड़िया चाररस्ता) के टाइल्स के प्रसिद्ध व्यापारी परम वैष्णव-नागरिक मे०श्रीओच्छवलाल गोवर्धनदासजी शाह ने इस भक्तिवादके समस्त मुद्रापण के द्रव्यभारको स्वीकार कर मेरे भारको कम कर दिया। ये शेठजी बड़े उदार हैं। इन्होंने कई धार्मिक ग्रन्थ छपाये हैं। अध्ययनशील छात्रों को छात्रवृत्ति भी दिया करते हैं। मैं उक्त दोनों महानुभावोंका परम कृतज्ञ हूँ। एक विशेष बात यह है कि मैंने शेठजी से निर्णीत कर लियाहै कि विजयमालासहित भक्तिवाद के पुनः प्रकाशन का अधिकार प्रकाशक तथा लेखक दोनोंको होगा। गुरुपूर्णिमा सं० २००१ वि.।

भण्डेरी-राममन्दिर
शारंगपुरदर्वाजाबाहर
अहमदाबाद-२

पण्डितसम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य
वेदान्तपीठाचार्य

श्रीरघुनाथो विजयतेतराम् ।

उपनिषद्भाष्यकारपण्डितसम्राट्स्वामि श्रीवैष्णवाचार्य-
वेदान्तपीठाचार्यप्रणीतः

शिक्षाकलानिधिः

भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ! ॥
धनं च राज्यं कुलं विशालं क्षिपति न किमपि समागतकालम् ।
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ! ॥
अनुपमकरुणावरुणागारं महीमहीधरादिकर्त्तारम् ।
सकलत्रातारं हर्त्तारं सर्वज्ञं प्रभुसर्वाधारम् ॥
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ! ॥१॥
लोभं क्रोधं कामविकारं मदिरापानं मांसाहारम् ।
द्यूतक्रीडां धनापहारं हित्वा हिन्सां तथाप्रकारम् ॥
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ! ॥२॥
अपकृत्यं त्यज कुरु सत्कृत्यं मुक्त्वा सकलं भज हरिभृत्यम् ॥
अनृतं त्यक्त्वा वद मृदुसत्यं चाश्रय रामं त्यज भवनृत्यम् ॥
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ! ॥३॥

श्रयणीयो रामः सकलेशः परो यतो न हि कोऽपि परेशः ।
श्रयते यं गिरिशश्च गणेशः शक्तिर्विधी रविश्च सुरेशः ॥
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्य मते ! ॥४॥

रामो भगिनी रामो माता रामः पिता सखा सुखदाता ।
रामो विद्या वित्तं भ्राता रामं विना न कश्चित् त्राता ॥
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ! ॥५॥

कीर्तनयोग्यः श्रीमद्रामः पूजनयोग्यः श्रीमद्रामः ।
दर्शनयोग्यः श्रीमद्रामः वन्दनयोग्यः श्रीमद्रामः ॥
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ! ॥६॥

चिदचिद्वस्तुविभिन्नो रामश्चिदचिद्वस्तुविशिष्टो रामः ।
चिदचिद्वस्तुशरीरी रामश्चिदचिद्वस्तुनियन्ता रामः ।
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ! ॥७॥

सर्वस्यान्तर्बाह्यो रामः सर्वेषामाराध्यो रामः ।
सर्वफलानां दाता रामः सर्वभयेभ्यस्त्राता रामः ।
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ! ॥८॥

सज्जगतः सद्धेतू रामः कार्यं सद् विश्वं ह्यपि रामः ।
सच्चिदचिज्जगदात्मा रामस्तन्न हि चिदचिदभिन्नो रामः ।
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ! ॥९॥

जीवोऽणुर्विभुरीशो रामो जीवोऽशक्तः शक्तो रामः ।
जीवो देहो देही रामो जीवो दासः स्वामी रामः ॥
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ! ॥१०॥

सुशरशरासनधारी रामः श्रीसाकेतविहारी रामः ।
अवगुणवृन्दविरोधी रामो दिव्यगुणानामुदधी रामः ॥
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ? ॥११॥
नत्या रक्षति लोकं रामः श्रित्या चाभयदाता रामः ।
भक्त्या यच्छति मुक्तिं रामः स्तुत्या सफलविधाता रामः ।
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते । १२॥
उभयविभूतिसुनायकरामं सीतापतिरघुनायकरामम् ।
जगतश्चैकविधायकरामं स्वाश्रितजनसुखदायकरामम् ॥
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ॥१३॥
मुनिवरगणपरिपूजितरामं श्रुतिसुरनिचयसुवन्दितरामम् ।
नित्यमुक्तसंसेवितरामं सच्चित्सुखस्वरूपं रामम् ॥
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ।१४॥
स्मरति न रामः श्रितजनपापं हरति जनानां त्रिविधं तापम् ।
श्रोतुमशक्तः स्वजनविलापं हृष्यति श्रुत्वा श्रितजयलापम् ।
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ॥१५॥
अन्ते रामस्मरणं भूयाद् रामचरणजलपानं भूयात् ।
श्रीमद्रामः शरणं भूयाद् रामनाम वरवदने भूयात् ।
भज रघुनाथं भज रघुनाथं रघुनाथं भज भव्यमते ॥१६॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितः ।
शिक्षाकलानिधिर्भूयात् सर्वकल्याणकारकः ॥

नमो भगवते श्रीकृष्णाय

प्रकाशकीय वक्तव्य

वारि मथे बरु होय घृत सिकतासे बरु तेल ।
बिन हरि-भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल ॥

विश्वमान्य ग्रन्थ श्रीरामचरितमानसके रचयिता कविसम्राट् गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज भक्तशिरोमणिका कथन है कि—पानीको मथने से कदाचित् घृत निकलना सम्भवित हो और नदीकी रेतसे कदाचित् तेल निकलना भी सम्भवित हो, तो भी यह अकाट्य-सिद्धान्त है कि—"बिना भगवद्भक्तिके भवसिन्धु नहीं तर सकते हैं ।"

सरलतासे मोक्ष प्राप्त करानेवाली भक्तिका प्रतिपादक ग्रन्थ मानवमात्रका कल्याणकारी है । विश्वमें परमशान्तिका स्थापन भी परमात्माकी भक्ति ही कर सकती है । गोस्वामी श्रीतुलसीदास जीने कहा है कि—

उमा जे रामचरणरत विगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत् कासन करहिं विरोध ॥

पण्डितसम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यजी द्वारा रचित 'भक्तिवाद' नामक ग्रन्थरत्न मैंने देखा । उसमें भक्ति विषयक प्रायः सभी शंकाओंका समाधान शास्त्र प्रमाणों और अकाट्य युक्तियोंसे किया गया है । मेरे परमस्नेही श्रीनरसिंहमन्दिर (भण्डारीपोल) के महन्त

पं० श्रीपुरुषोत्तमदास जी की प्रेरणासे भक्तिवादके प्रकाशनकी बात मैं ने स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य जी से की। वे बड़ी सरलप्रकृतिके महात्मा हैं। उन्होंने मेरी बात स्वीकार कर ली और पुनः प्रकाशनका अधिकार लेखक और प्रकाशक दोनोंके लिये स्वतंत्र सुरक्षित रखकर विजयमालासहित भक्तिवादके प्रकाशनकी अनुमति प्रदान की। भक्तिवादके प्रकाशनसे मुझे भगवान् तथा भगवद्भक्तोंकी सेवाका लाभ मिला है, अतः मैं उक्त स्वामी जीका आभार मानता हूँ।

मे० ओच्छवलाल गोवर्धनदास शाह
टाइल्स तथा सिनेटरीवेर के व्यापारी
खाड़िया चार रास्ता-अहमदाबाद

शुद्धिपत्रम्

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
द्विट्ट	द्विट्ट	८	७
यमेवेत	यमेवेति	१५	२
ऐश्वयवि	ऐश्वर्यावि	४८	९
तस्त्यवत्यब	तस्त्यक्तब	९७	७
कालतः	कालतः	१३४	२

श्री सीतारामाभ्यां नमः ।

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।

जगद्गुरु श्रीटीलाचार्याय नमः ।

श्रीटीलाद्वारपीठनामक श्रीरामानन्दमहापीठाधिपति

श्री १००८ जगद्गुरुश्रीसहजरामदेवाचार्यजी

महामुनीन्द्र विरचित

श्रीरामोपासनपञ्चकम्

श्री वैष्णवभूषण महन्त पण्डित श्रीपुरुषोत्तमदासजी महाराज

कृतानुवादसहितम् ।

*

मंगलाचरणम् ।

भूतानामादिमध्यान्तभूमिं श्रीभूमिजापतिम् ।
रामानन्दार्यटीलार्यौ वन्देऽन्यान् देशिकानपि ॥

मैं (श्री सहजरामाचार्य) भूतमात्रकी आदि मध्य तथा अन्त अवस्थाको प्राप्त हुए अर्थात् नाम और रूपके विभागके अयोग्य चित् (चेतन–जीव) और अचित् (अचेतन) तत्त्वोंसे विशिष्ट (युक्त) तथा नाम और रूपके विभागके योग्य चित् और अचित् तत्त्वोंसे विशिष्ट अवस्थाको प्राप्त विशिष्टाद्वैत ब्रह्म श्रीजानकीनाथ भगवान् श्रीरामजी, श्री ११०८ आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज, श्री १००८ जगद्गुरु श्रीटीलाचार्यजी महाराज तथा अन्य निजाचार्योंका भी वन्दन करता हूँ ॥

भक्त्या समेत्य रघुनायकमन्दिरादे-
यंत् क्षालनाङ्कनसुमार्जनमण्डनादि ।
श्रीशार्ङ्गिणोऽभिगमनाख्यमुपासनं तत्
सम्भाषितं हि निगमागममर्मविज्ञैः ॥

भक्तिसे जाकर श्रीरघुनाथजीके जो मन्दिरादिकों के धोना, चित्रित करना, साफ करना तथा सजाना इत्यादि हैं—उन्हे निगमागमके रहस्य जाननेवालोंने श्रीरामजीकी **अभिगमननामक** उपासना कही है ॥१॥

सद्गन्धसार तुलसीकुसुमस्रजम्बु-
स्वादिष्टभोज्यपटभूषणसाधनानाम् ।
सम्पादनं रघुवरस्य विभोरुपादा-
नाख्यं हि मुक्तिसुखदं समुपासनञ्च ॥२॥

उत्तम चन्दन तुलसी फूल माला जल स्वादिष्ट खाद्यपदार्थ तथा वस्त्र भूषण इत्यादि साधनों का सम्पादन (इकट्ठाकरना) ही मुक्तिसुख देनेवाली विभु भगवान् श्रीरामजीकी **उपादाननामक** उपासना है॥२॥

इज्या बुधैरभिहिता जनकात्मजायाः
पत्युः परिच्छदयुतस्य समर्चनं यत् ।
शीघ्रं यतो हृदयसंशयभेदनं वै
नित्यस्तथा भवति संसृतिपाशमोक्षः ॥३॥

छत्र चामरादि सामग्रीयुक्त भगवान् श्रीजानकीनाथजीके षोडश-विध अर्चनको विद्वानोंने **इज्यानामक** उपासना कही है । जिससे शीघ्र ही हृदयके संशयोंका नाश होता है और (अविनाशी) जन्म मरणरूपी संसार फांससे अविनाशी मोक्ष मिलता है ॥२॥

रामायणश्रुतिगणागमसूत्रगीता-
वेदान्तभाष्यपठनं रघुनन्दनस्य ।
सार्थः षडक्षरसुमन्त्रजपः स्तवश्च
स्वाध्यायनामकमुपासनमत्र बोध्यम् ॥४॥

श्रीमद्रामायण वेद आगम (पाञ्चरात्र) ब्रह्मसूत्र गीता और उपनिषद् अर्थात् प्रस्थानत्रयके आनन्दभाष्योंका पठन अर्थानुन्धानपूर्वक श्रीरामजीके षडक्षर श्रीतारकमन्त्रराजका जप तथा श्रीरामजीके स्तोत्रोंका पाठ **स्वाध्यायनामक** उपासना जानना चाहिये ॥४॥

सर्वप्रपञ्चजनकोऽखिललोकनाथो
यः सर्वविच्च निखिलाधिकरूपशाली ।
सीतापतेः शुभगुणाम्बुनिधेर्हि तस्य
ध्यानञ्च पञ्चममुपासनमत्र योगः ॥५॥

जो सर्वजगत्के जनक (कारण) हैं, सर्वलोकोंके स्वामी हैं, सर्वज्ञ हैं और सर्वसे अधिक सुन्दररूपवाले हैं; दिव्यगुणोंके सागर उन श्रीसीतापति भगवान् श्रीरामजीका ध्यानही **योगनामक** पांचवीं उपासना है॥५॥

कृतं सहजरामेण रामोपासनपञ्चकम् ।
भूयान्मुक्तिकामानां मुक्तिमार्गप्रबोधकम् ॥

श्री १००८ जगद्गुरु श्रीसहजरामदेवाचार्यजी महाराज महामुनीन्द्र विरचित यह **श्रीरामोपासनपञ्चक** मुमुक्षु पुरुषोंको मुक्तिमार्ग बतलाने वाला हो ।

सूचीपत्र

श्रीरामो विजयतेतराम्

आनन्दभाष्यकारश्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।

पण्डितसम्राट्स्वामिश्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठाधीशविरचितो

भक्तिवादः

अथ प्रथमः परिच्छेदः ।

परिपूर्णतमं ब्रह्म जगज्जन्मादिकारणम् ।
वन्देऽखिलेश्वरं रामं दिव्यदेहं गुणार्णवम् ॥१॥

परब्रह्मणे श्रीरामाय नमः ।

अथ पण्डितसम्राट् स्वामिश्रीवैष्णवाचार्य

वेदान्तपीठाधीशविरचिता

विजयमाला

नत्वा रामं तथा रामानन्दाचार्यं जगद्गुरुम् ।
जगद्गुरुं च टीलार्यं मङ्गलार्यं प्रणौम्यहम् ॥१॥
सद्गुरोः पादपद्मं च नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
कुर्वे विजयमालां सत्सिद्धान्तसौरभान्विताम् ॥२॥

ग्रन्थकी निर्विघ्नसमाप्तिके लिये सर्वेश्वर श्रीरामजीका वन्दनरूप मङ्गल किया जाता है। जगत्की सृष्टि स्थिति और प्रलयके कारण अत एव ...र्णतम ब्रह्म, दिव्यदेहवाले तथा गुणों के समुद्र सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम ...ी का मैं वन्दन करता हूँ॥ १ ॥

सूत्रकारौ नमस्कृत्य शाण्डिल्यबादरायणौ ।
श्रीमद्‌बोधायनं वन्दे महर्षिं वृत्तिकारकम् ॥ २ ॥
आनन्दभाष्यकर्त्तारमानन्दमयभक्तिदम् ।
रामानन्दप्रदं रामानन्दाचार्यं नमाम्यहम् ॥ ३ ॥
शिक्षासुधाप्रदं नत्वा टीलाचार्यं जगद्‌गुरुम् ।
मङ्गलाम्बुनिधिं वन्दे मङ्गलार्यं मुनीश्वरम् ॥ ४ ॥
श्रीमद्रामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥ २ ॥
गुरुदेवं नमस्कृत्य ज्ञानभक्तिदयानिधिम् ।

भक्तिसूत्रकार महर्षि शाण्डिल्य तथा ब्रह्मसूत्रकार महर्षि वादरायणको नमस्कार करके बोधायनवृत्तिकार श्रीपुरुषोत्तमाचार्यनामक महर्षि श्रीबोधायनजीका मैं वन्दन करता हूँ ॥२॥

आनन्दमय भगवान् श्रीरामजीकी भक्तिको देनेवाले अत एव श्रीरामजीके आनन्दके प्रदाता आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी आचार्यसार्वभौमको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३ ॥

शिक्षासुधाको प्रदान करनेवाले श्रीटीलाद्वारपीठसंस्थापक जगद्‌गुरु श्रीटीलाचार्य (श्रीसाकेतनिवासाचार्य)जी का तथा मङ्गलोंके समुद्र श्रीमङ्गलाचार्यजी मुनीश्वरका मैं वन्दन करता हूँ ॥४ ॥

श्रीरामजी जिसके आदिमें हैं, श्रीरामानन्दाचार्यजी जिसके मध्यमें हैं और मेरे गुरुदेव जिसके अन्तमें हैं उस गुरुपरम्पराका मैं वन्दन करताहूँ॥ ५ ॥

ज्ञान, भक्ति और दयाके भण्डार परमपूज्य श्रीगुरुदेवको नमस्कार

वादे विजयदं श्रीमद्भक्तिवादं करोम्यहम् ॥ ६ ॥
परानन्दमयो रामः प्राप्योपायतया मतः ।
प्रेमपूर्वमनुध्यानं तस्य, भक्तितयेरितम् ॥ ७ ॥

करके वादमें विजय देनेवाले श्रीभक्तिवादनामक ग्रन्थकी मैं रचना करता हूँ ।

अनुबन्धचतुष्टय

यहाँ पर अधिकारी, विषय, प्रयोजन तथा सम्बन्धरूप अनुबन्धचतुष्टयको अधोलिखित प्रकारसे जानना चाहिए---

१—भक्तितत्त्वके जिज्ञासुजन ही इस भक्तिवाद के **अधिकारी** हैं ।

२—**भक्तितत्त्व** ही इस ग्रन्थका मुख्य विषय है ।

३—भक्तिका फलरूप मोक्ष ही इसका **प्रयोजन** है ।

४—भक्तितत्त्व और भक्तिवादग्रन्थका प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव**सम्बन्ध** है । अर्थात भक्तिवादग्रन्थ भक्तिका प्रतिपादक है और भक्तितत्त्व भक्तिवादग्रन्थका प्रतिपाद्य है ॥ ६ ॥

भक्तिका लक्षण

परम आनन्दमय भगवान् श्रीरामजी शास्त्रों तथा विद्वानों द्वारा प्राप्य और उपायरूप माने गये हैं। उन श्रीरामजीका प्रेमपूर्वक निरन्तर ध्यान ही भक्तिरूपसे कहा गया है ।

श्रीरामजी प्राप्य और उपाय हैं ।

आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजीने ब्रह्मसूत्रोंके आनन्दभाष्यके मङ्गलाचरणमें श्रीराम जी को प्राप्य कहा है---

श्रीरामाख्यं परं ब्रह्म सदाम्नायान्तदीपितम् ।

स्वभक्तध्येयमाप्यञ्च वन्दे दिव्यगुणाकरम् ॥

अर्थ—आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी कहते हैं कि—सदा वेदान्तसे प्रकाशित (वेदान्तवेद्य), स्वभक्तोंसे ध्यान करने योग्य और दिव्य गुणोंके आकर (खानि) श्रीरामनामवाले परब्रह्मका मैं वन्दन करता हूँ।

कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च । १ । २ । ४ सूत्रके आनन्दभाष्यमें कहा है कि—"शारीरो मनोमयत्वादिगुणको न भवितुमर्हति । कुतः ? कर्मकर्तृव्यपदेशात् । "एतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मि" (छां. ३ । १४ । ४) इतिप्रकृतं मनोमयत्वादिगुणकमुपास्यं परमात्मानं प्राप्यत्वेन कर्मत्वेन व्यपदिशति । अभिसंभवितास्मीत्युपासकं जीवं कर्तृत्वेन व्यपदिशति । अतः प्राप्ता जीव उपासकः प्राप्यं ब्रह्मोपास्यम् । न च सत्यां गतावेकस्यैव कर्मकर्तृव्यपदेशो युज्यते । तथोपास्योपासकभावोऽपि भेदाधिष्ठान एवेति न शारीरो मनोमयत्वादिगुणकः । श्रुत्यर्थस्तु—प्रारब्धकर्मावसाने मुमुक्षुरहं शरीरपातादूर्ध्वं प्रकृतं मनोमयत्वादिगुणकमेतं परमस्मानमभिसम्भवितास्मि प्राप्तास्मि" । (ब्र. सू. आनन्दभाष्य १।२।४)

अर्थ—शारीर अर्थात् जीव मनोमयत्वादिगुणवाला होने योग्य नहीं है। 'किस कारणसे' इस प्रश्नके उत्तररूपमें श्रीवादरायणजी कहते हैं कि-कर्मकर्तृव्यपदेशात् । कर्म और कर्त्ताके व्यपदिष्ट अर्थात् (कथित) होनेसे । "यहाँसे जाकर इस परमात्माको प्राप्त होनेवाला हूँ" श्रुति इस प्रकारसे प्रकृत मनोयत्वादिगुणवाले उपास्य परमात्मा (श्रीरामजी) को प्राप्यरूपसे अर्थात् प्राप्तिकर्मरूपसे कहती है। और 'अभिसम्भवितास्मि' इस रूपसे उपासक जीवको प्राप्तिकर्त्ता रूपसे कहती है। अतः प्राप्ता

जीव उपासक है और प्राप्य ब्रह्म उपास्य है। गति रहने पर एकको ही कर्म और कर्त्तारूपसे कहना योग्य नहीं है। उसी प्रकार उपास्योपासकभाव भी भिन्न पदार्थमें ही होता है अभिन्नमें नहीं। इसलिए जीव मनोमयत्वादि गुणवाला नहीं है। श्रुतिका अर्थ तो यह है कि— प्रारब्धकर्मके समाप्त होनेपर मुमुक्षु मैं शरीरपातके अनन्तर मनोमयत्वादि गुणवाले इस परमात्माको प्राप्त होऊँगा।

फलमत उपपत्तेः ३।२। ३७ सूत्रके आनन्दभाष्यमें श्रीसम्प्रदायाचार्य भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजीने परमात्माको उपायरूपसे कहा है।

"भोगापवर्गादिलक्षणं फलमतः परमपुरुषादेव सम्पद्यते"

अर्थ—भोग और मोक्षरूप फल परमपुरुष भगवान् श्रीराम जी से ही होता है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहा है कि—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥(गी. १०।१०)

इस श्लोकके आनन्दभाष्यमें भगवान् श्री रामानन्दाचायजीने भी कहा है कि—

"तेषां पूर्वोपचितभक्तिमतां सार्वदिकयोगाकांक्षावतां भजतां भजनमेवैकक्रियावतां तमतिप्रसिद्धं ज्ञानयोगं प्रीतिपूर्वकं ददामि येन ज्ञानयोगेन ते मदनन्यभक्ता मां मत्समीपमनायासेनायान्ति ॥" (गीताका आनन्दभाष्य १०।१०)

अर्थ—पूर्वमें उपार्जित भक्तिवाले सर्वदाके योगकी आकांक्षावाले

भजनमात्र करनेवाले उन भक्तोंको अतिप्रसिद्ध वह ज्ञानयोग मैं प्रेमपूर्वक देता हूँ, जिस ज्ञानयोगसे वे मेरे अनन्यभक्त अनायास ही मेरे समीपमें आ जाते हैं ।

जगद्गुरु श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी ने भी कहा है —

"कारुण्याम्बुनिधिश्च यस्तनुभृतां प्राप्यस्तथा प्रापकः"

अर्थ—करुणासिन्धु जो भगवान् श्रीरामजी प्राणियोंके प्राप्य तथा प्रापक हैं ।

आनन्दभाष्यमें भक्तिका लक्षण

आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजीने वेदान्तदर्शनके आनन्दभाष्यमें भक्तिके विषयमें कहा है कि—

"सा च भक्तिः परमप्रेयो भगवदितरवैतृष्ण्यपूर्वकपरमपुरुषानुरागरूपो ज्ञानविशेष एव ।" (आनन्दभाष्य १।१।१)

अर्थ—वह भक्ति परमप्रिय भगवान्‌से भिन्न पदार्थोंके वैराग्यपूर्वक परमपुरुष (भगवान् श्री राम) में अनुराग (स्नेह) रूप ज्ञानविशेष ही है।

भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजीने "ध्यानाच्च" (ब्रह्मसूत्र ४।१।८) सूत्रके आनन्दभाष्यमें "उपासनस्य ध्यानरूपत्वात्" इस प्रकार भक्तिको ध्यानरूप कहा है ।

श्रीवैष्णवमताब्जभास्करमें भक्तिका लक्षण

भगवान् आनन्दभाष्यकारने स्वरचित श्रीवैष्णवमताब्जभास्करनामक प्रबन्धमें भी कहा है कि—

"सा तैलधारासमसंस्मृतिप्रसन्तानरूपेशि परानुरक्तिः ।
भक्तिर्विवेकादिकसप्तजन्या तथा यमाद्यष्टसुबोधकाङ्गा ॥"

अर्थ—विवेक इत्यादि सप्तसाधनोंसे उत्पन्न हुई और यमनियमादि अष्ट तथा ज्ञानरूप अङ्गवाली ईश्वर भगवान् श्रीराम जी में अनुरागरूप भक्ति परा भक्ति है।

साधनदीपिकामें भक्तिका लक्षण

श्रीबोधायनवृत्तिकार भगवान् श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायनके शिष्य जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्य जो ने भी साधनदोपिकामें भक्तिका लक्षण कहा है कि—

"भक्तिर्ध्रुवा स्मृतिः सा च विवेकादिकसप्तकात् ॥"

अर्थ—ध्रुवा स्मृति अर्थात् तैलधाराके समान अखण्ड श्रीरामस्मरण ही 'भक्ति है। वह भक्ति विवेक इत्यादि सातसाधनोंसे उत्पन्न होती है।

श्रीबोधायनवृत्तिमें भक्तिका लक्षण

श्रीबोधायनवृत्तिकार भगवान् श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायनने श्रीबोधायनवृत्तिमें भक्तिको उपासनशब्दसे कहकर उसका लक्षण कहा है कि—

"उपासनं स्याद् ध्रुवानुस्मृतिर्दर्शनान्निर्वचनाच्च ।"

अर्थ—वह उपासन (भक्ति) ध्रुवानुस्मृति अर्थात् अखण्डस्मरणरूप है दर्शनसे और निर्वचनसे।

शाण्डिल्यसूत्रमें भक्ति

शाण्डिल्यसूत्रमें अर्थात् भक्तिमीमांसामें महर्षि शाण्डिल्य जीने भक्तिका लक्षण कहा है कि—

सा परानुरक्तिरीश्वरे। १।१।२

अर्थ—ईश्वरमें परम प्रीति ही भक्ति है ॥७॥

परब्रह्मणि रामे हि भक्तिः कार्या मुमुक्षुभिः।
मोक्षस्योपायता यस्मात् तस्यां वै श्रूयते श्रुतौ ॥ ८ ॥
ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्त्वं हि प्राप्नोतीति श्रुतौ श्रुतम्।
ततो मोक्षः फलं भक्तेस्तादृश्या निश्चितं बुधैः ॥ ९ ॥
ज्ञानं ननु मतं संस्था, मैवं तद् द्विषतोऽपि च।
राजसंस्थोऽनुरक्तो हि कथ्यते नृपतेर्न द्विट् ॥ १० ॥

भक्ति मोक्षका उपाय है।

मुमुक्षु पुरुषोंको परब्रह्म भगवान् श्रीराम जी की भक्ति करनी चाहिये, क्योंकि श्रुतिमें मोक्षके उपायरूपसे भक्ति ही सुनी जाती है ॥८॥

वह श्रुति कौनसी है? इसप्रश्नके उत्तररूपसे कहा जाता है कि-छान्दोग्यउ०अ०२ की वह श्रुति है—"ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति।" ब्रह्म पदवाच्य भगवान् श्रीराममें गाढ़ अनुराग अर्थात् भक्ति वाला पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है। इस प्रकार श्रुतिमें सुना गया है। यहाँ पर संस्थाका अर्थ है सम्यक् स्थिति अर्थात् गाढ़ अनुराग। अतः विद्वानोंने उक्तप्रकारकी भक्तिका मोक्षरूप फल निश्चित किया है ॥९॥

"ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति"(छा.)इस श्रुतिके संस्था शब्दका अर्थ ज्ञान नहीं कह सकते, क्योंकि ब्रह्मसंस्था अर्थात् ब्रह्मका ज्ञान तो भगवान् के द्वेषीको भी होता है। उसे ब्रह्मसंस्थ नहीं कहा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि राजाका ज्ञान राजाके द्वेषी जनोंको होता है और राजाके अनुरागी प्रजाजनोंको भी होता है। तो भी राजाके अनुरागीको ही राजसंस्थ कहते हैं। राजद्वेषी पुरुषको राजसंस्थ नहीं कहते हैं। इसीप्रकार ब्रह्म (भगवान् श्रीराम) के अनुरागी को ही ब्रह्मसंस्थ कहते

संस्था च तत्त्वतो ज्ञानं द्वेषिणि नैव तत्स्थितिः ।

इति चेन्न, कुतो यस्माद् भक्त्या ज्ञानाद्युपक्षयः ॥ ११ ॥

हैं। ब्रह्मद्वेषीको ब्रह्मसंस्थ नहीं कह सकते हैं। इसलिये उक्त श्रुतिका अर्थ है ब्रह्मसंस्थ अर्थात् भगवान्का भक्त मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १० ॥

" तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति " (पुरुषसूक्त) उस परमात्माको जान कर ही मृत्युके पारको पाता है। इस श्रुतिकी सङ्गतिके लिये उक्त श्रुतिमें संस्था शब्दका अर्थ तात्त्विक ज्ञान मानना चाहिये। ब्रह्म-द्वेषीमें ब्रह्मका तात्त्विक ज्ञान होता ही नहीं। इसलिये कुछ दोष न होगा। इस प्रकारकी शंका नहीं की जा सकती है, क्योंकि कथित ज्ञान वैराग्यादि मुक्ति साधनोंका भक्तिसे उपक्षय अर्थात् उपशम हो जाता है। क्योंकि भक्तिके फलसे अतिरिक्त फलको वैराग्यादि उत्पन्न ही नहीं कर सकते हैं। अतः मुक्तिका साक्षात् साधन भक्ति है।

ऐसा नहीं कह सकते कि " ज्ञानवैराग्यादिकोंसे भक्तिका ही उपक्षय क्यों न मान लिया जाय ? " इसका कारण यह है कि भक्ति ज्ञानवैराग्यादिसे अविनाभूत तत्त्व है। अर्थात् जहाँ भक्ति होती है वहाँ ज्ञानवैराग्यादि रहते ही हैं। इसलिये ज्ञानवैराग्यादिसाधनोंका फल भक्तिके फलसे पृथक् नहीं माना जाता है। इसलिए भक्तिसे ज्ञानादि-कोंका उपक्षय (उपशम=समावेश) माना जाता है। ज्ञानादि तो भक्तिस्थलसे अतिरिक्त स्थलमें भी रहते हैं। अतः ज्ञानादिकोंसे भक्तिका उपक्षय मानना अनुचित है। अतः ' ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति ' इस श्रुतिका ' भगवानके तात्त्विक ज्ञानवाला मोक्षको पाता है ' यह अर्थ नहीं है। किन्तु उक्त श्रुतिका अर्थ है—'भगवानमें गाढ़ अनुराग अर्थात्

द्वेषस्य प्रतिपक्षित्वादीशे च रसशब्दतः।
अनुरागस्वरूपा सा भक्तिर्भक्तैर्बुधैर्मता ॥ १२ ॥
कृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानं यथा कर्म न मन्यते।
भक्तिश्चापि ततो हेतोः कर्मरूपा तथा न हि ॥ १३ ॥
भक्तिजन्या च या मुक्तिरनन्ता सा श्रुतौ श्रुता।

भक्तिवाला पुरुष मोक्षको पाता है' इसलिए भक्तिका ही फल मोक्ष है ॥ ११ ॥

भक्ति अनुरागस्वरूप है।

अब कहा जाता है कि भक्तिका अर्थ अनुराग है। 'यह द्वेषी है' और 'यह भक्त है' इस प्रकारसे द्वेषका विरोधी होनेसे भक्तिको अनुरागरूप कहते हैं। इसी प्रकार 'रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। वे भगवान रसरूप हैं। रसरूप भगवान्‌को पाकर भक्त आनन्दी होता है।' इस प्रकार श्रुतिमें ईश्वरके लिये रस शब्दका प्रयोग किया गया है। रसस्वरूप भगवान्‌में अनुराग होना उचित ही है। इसलिये भक्त विद्वानोंने भक्तिको अनुरागरूप माना है ॥ १२ ॥

भक्ति कर्मस्वरूप नहीं है।

कृति अर्थात् प्रयत्नकी अपेक्षा न करनेसे जैसे ज्ञानको कर्म नहीं माना जाता है उसी प्रकार प्रयत्नकी अपेक्षा न करनेसे भक्ति भी कर्मरूप नहीं मानी जाती है ॥ १३ ॥

"न स पुनरावर्त्तते" वह फिर पुनरावृत्तिको नहीं प्राप्त होता है। इस प्रकार श्रुतिमें भक्तिसे उत्पन्न हुई मुक्तिको अनन्त कहा है। इसलिये विद्वानों द्वारा भक्ति कर्मस्वरूप नहीं मानी गई है क्योंकि "न

ततश्चापि न भक्तिर्हि कर्मरूपा मता बुधैः ।। १४ ।।
ज्ञानिनश्चापि शास्त्रेषु भक्तिलाभो हि दृश्यते ।
न ज्ञानरूपता चापि भक्तेश्च मन्यते ततः ।। १५ ।।
इत्युपनिषद्भाष्यकारपण्डितसम्राट् स्वामीश्रीवैष्णवाचार्य वेदान्तीर्थप्रणीते भक्तिवादे प्रथमः परिच्छेदः ।।१ ।।

स्त्यकृतः कृतेन " अकृत अर्थात् नित्य आत्मा कृत अर्थात् कर्मसे नहीं प्राप्त होता है । इस प्रकार श्रुतिमें कर्मसे नित्यफलकी प्राप्तिका निषेध किया गया है ।। १४ ।।

भक्ति ज्ञानस्वरूप भी नहीं है।

"बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते । वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।" (गीता ७। १९) अर्थ—बहुत जन्मोंके अन्तमें 'भगवान् श्रीराम ही परब्रह्म सर्वशेषी हैं, मैं उनका शेष हूँ' इस प्रकारके ज्ञानवाला मनुष्य "मेरे परमप्राप्य प्रापकादि सर्व भगवान् हैं, अथवा समस्त जगत् वासुदेव है अर्थात् भगवदात्मक है । " अतः मेरा प्रपन्न (भक्त) होता है । वह महात्मा दुर्लभ है । अर्थात् वहुत कठिनता से मिलता है । इस प्रकारसे ज्ञानी पुरुषकी भी भक्तिकी प्राप्ति दृष्टि-गोचर होती है । इसलिये भक्तिको ज्ञानरूप नहीं माना जाता है ।।१५।।

इति पण्डितसम्राट् स्वामि श्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठाधीश— विरचितायां विजयमालायां प्रथमः परिच्छेदः ।।१।।

अथ द्वितीयः परिच्छेदः

सांख्यं योगश्च भक्तिश्च मुक्तिहेतुतया श्रुताः।
संशयस्तत्र किं भक्तिः सांख्ययोगावपेक्षते ? ॥ १ ॥
तयोरपेक्षणीया वा भक्तिस्तत्र वरं च किम् ? ।
भक्तौ द्वयोरपेक्ष्यत्वान्मुख्यं सा मुक्तिसाधनम् ॥ २ ॥

द्वितीयः परिच्छेदः

सांख्यका अर्थ है आत्मज्ञान। "अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥" (कठ० १।२।२२) अर्थ—कर्मकृत प्राकृत शरीरसे रहित अनित्य शरीरोंमें भी स्थित महान् और सर्वव्यापक आत्माको (परमात्माको) जानकर धीर पुरुष शोक नहीं करता है। इत्यादि श्रुतियोंमें सांख्य अर्थात आत्मज्ञानको मुक्तिका कारण कहा गया है। "तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्। अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥" (कठ १। २। १२) अर्थ—बहुत कठिनतासे दृष्टिगोचर होनेवाले मायासे छिपे हुए सर्वत्र प्रविष्ट हृदयगुफामें स्थित अन्तर्यामी तथा सर्वसे प्राचीन भगवान्को यमनियमादि अष्ट अङ्गवाले चित्तवृत्तिनिरोधरूप अध्यात्मयोग लाभसे जानकर धीर पुरुष हर्ष और शोकको त्याग देता है। इत्यादि श्रुतियोंमें योगको मोक्षका कारण कहा गया है। और "ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति" (छां. उ. अ. २खं. २३। १) अर्थ—ब्रह्म अर्थात भगवान् श्रीराम जी की भक्तिवाला पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है। इत्यादि श्रुतियोंमें भक्तिको मोक्षका हेतु कहा है। इस प्रकार श्रुतियों

श्रूयते साधनत्वञ्च यस्मिन् प्रकरणे द्वयोः।
भक्तेरेव हि तत् तस्मात् तस्याः प्रधानता मता ॥ ३ ॥

में सांख्य, योग और भक्ति तीनो मुक्तिके कारणरूपसे सुने गये हैं। उसमें संशय होता है कि भक्ति क्या सांख्य और योग की अपेक्षा करती है अथवा सांख्य और योग भक्तिकी अपेक्षा करते हैं? दोनों पक्षोंमें से श्रेष्ठ कौनसा पक्ष है? इस प्रश्नके उत्तररूपसे कहा जाता है कि—भक्तिमें सांख्य और योग दोनों अपेक्षित हैं। क्योंकि आत्मज्ञान-के विना भगवदितर पदार्थोंसे वैराग्य न होगा और वैराग्य बिना भग-वान्में परानुरागरूप भक्ति न होगी अतः 'आत्मा प्रकृतिसे विलक्षण तथा भगवान् श्रीरामजीका शेष है।' इसप्रकारका आत्मज्ञान भक्ति-में अपेक्षित है। इसी प्रकार वासनामूलक चित्तवृत्तियाँ भक्तिकी-उत्पत्ति में बाधक हैं। इसलिए उनके नाश करने के लिये भक्तिमें भगवद्ध्यान जिसमें प्रधान है ऐसा अष्टाङ्गयोग भी अपेक्षित है। अतः भक्ति ही मोक्षका मुख्य (प्रधान) साधन है। सांख्य और योग दोनों भक्तिके अङ्ग हैं ॥१॥ २ ॥

उक्त सांख्य और योग दोनों की मोक्षकारणता श्रुतिके जिस प्रकरणमें सुनी जाती है, वह भक्तिका ही प्रकरण है। इसलिये भक्तिकी ही प्रधानता है सांख्य और योगकी नहीं। कठोपनिषत्में कहा है कि—"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥ (कठ. १।२।२३।) अर्थ—वह परमात्मा प्रवचनसे अर्थात् प्रवचन-के साधन मननसे नहीं प्राप्त होता है, मेधा अर्थात् ध्यानसे नहीं

सत्येव दर्शने चैशे सर्वकर्मक्षयः श्रुतः ।
दर्शनं सांख्ययोगाभ्यां जायते न च भक्तितः ॥ ४ ॥
प्रसङ्गस्तत्र नो तस्या इति वक्तुं न शक्यते ।
अन्यथासिद्धता रामवरणेन तयोर्यतः ॥ ५ ॥
वरणं भक्तिलभ्यं तत् भक्तौ हि मुक्तिहेतुता ।
नान्यथासिद्धता भक्तेर्दर्शने द्वारता यतः ॥ ६ ॥

प्राप्त होता है और न बहुत श्रवणसे ही प्राप्त होता है । वह परमात्मा जिस साधक पुरुषको स्वीकार कर लेता है । उसे ही प्राप्त होता है । क्योंकि वह परमात्मा उस अपने प्रिय भक्तको अपने स्वरूपको प्रकाशित कर देता है । इसलिये भक्ति ही मोक्षका प्रधान साधन है ॥३॥

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥" अर्थ—उस परावर पुरुष (परमात्मा) के दर्शन होने पर इस जीवकी हृदय ग्रन्थि छूट जाती है, सर्व संशय कट जाते हैं अर्थात् दूर हो जाते हैं और सर्वकर्म क्षीण हो जाते हैं । इत्यादि श्रुतियों में भगवान्के दर्शन होने पर सर्व कर्मोंका क्षय सुना गया है । और दर्शन तो सांख्य और योगसे ही होता है भक्तिसे नहीं, क्योंकि वहां भक्तिका प्रसङ्ग ही नहीं है । इस प्रकारसे कुछ लोग कहते हैं । किन्तु इस प्रकार कहा नहीं जा सक्ता; क्योंकि भगवान् श्रीराम जी के वरण (स्वीकार) से सांख्य और योगकी अन्यथासिद्धि है । अर्थात् वरणसे दर्शन होता है । वरणके साथ कभी सांख्य और और योग रहते हैं और कभी नहीं भी रहते हैं इस लिये सर्वकर्म-

'यमेवे(ष)' श्रुतौ प्रोक्तं वरणं मुक्तिसाधनम् ।
न भक्तिरितिचेन्मैवं कुतश्चेदुच्यते यतः ॥ ७ ॥
वरणीयतया लोके दृष्टः प्रियतमस्ततः ।
भक्तप्रियतमो रामो वृणुयाद् भक्तमेव हि ॥ ८ ॥
'नान्यः पन्था' इति श्रुत्यामुख्यता साख्ययोगयोः ।
मैवं तयोरभावेऽपि शबर्यादेश्च मुक्तितः ॥ ९ ॥

क्षय करनेवाले दर्शनमें मुख्य हेतु वरण ही है । सांख्य और योग तो अन्यथासिद्ध हैं । वह भगवद्वरण भक्तिसे प्राप्त होता है । अतः मोक्ष-का कारण भक्ति ही है । दर्शनसे भक्तिको अन्यथा सिद्ध नहीं कह सकते हैं; क्योंकि भक्तिसे दर्शन द्वारा मुक्ति होती है । अर्थात् भक्तिसे मुक्ति प्राप्त करनेमें दर्शन व्यापार (द्वार) है और यह दार्शनिक सिद्धान्त है 'कि व्यापार से व्यापारी (व्यापारवाले साधन) की अन्यथासिद्धि नहीं होती है' ॥४॥५॥६॥

वादी शंका करता है कि—''यमेवैष वृणुते' इस श्रुतिमें वरणको मुक्तिसाधन कहा है भक्तिको नहीं । वादीकी शंकाके उत्तररूपसे कहा जाता है कि—उक्त प्रकारसे शंका नहीं की जा सकती, क्योंकि—लोकमें प्रियतमका ही वरण (स्वीकार) दिखाई देता है । अतः भक्तके प्रियतम भगवान् श्रीराम जी भी अपनेको प्रियतम मानने-वाले भक्तको ही प्रियतम मानेंगे । अत एव उस भक्तका वरण करेंगे ॥ ७ ॥ ८ ॥

वादी शंका करता है कि—तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते " (उस परमात्माको जानकरके ही मृत्युके पार

भक्तौ च ज्ञानसाजात्यान्नोक्तश्रुतिविरुद्धता ।
तस्माद्धि मुख्यता भक्तौ सम्मता मुक्तिसाधने ॥१०॥
'भक्त्या मामभिजानतीत्ये'वं भगवदुक्तितः ।
भक्तेर्ज्ञानाङ्गता युक्ता मैवं वाच्यं कुतो यतः॥११॥
साध्यसाधनभावो हि पर्वभेदेन चोभयोः ।
भक्त्या ज्ञानं ततो भक्तिराहितातिशया सती ॥१२॥
श्रीमद्भगवतः प्राप्तौ मुख्यं भवति साधनम् ।
ज्ञानाङ्गता न तद् भक्तौ मन्यते ज्ञानशालिभिः ॥१३॥

जा सकते हैं अर्थात् मोक्ष पा सकते हैं। दूसरा मार्ग है ही नहीं।)इस श्रुतिद्वारा सांख्य और योगकी ही प्रधानता मुक्तिसाधने में है। परन्तु यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि यदि वादीका कथन माना जायगा तो यहाँ पर कारणाभाव में भी कार्योत्पत्ति मानने पर व्यतिरेकव्यभिचार नामक दोष होगा; क्योंकि वादीके कथित सांख्ययोगरूपकारणोंके अभाव में भी शबरी आदिकी मुक्तिरूप कार्य हुआ है ॥९॥

भक्तिमें ज्ञानकी सजातीयता है अतः 'तमेव विदित्वा' इत्यादि श्रुतिसे विरोध भी नहीं है। अतः मुक्तिके मुख्य साधनरूपसे भक्ति ही मानी गई है ॥१०॥

अब शंका यह होती है कि—भगवान्ने गीताके अष्टादश-अध्यायमें कहा है कि—" भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः। " (गीता १८।५५) अर्थ—मैं जितना और जो हूँ, इसे वास्तवमें मनुष्य भक्तिसे जानता है।"

भगवान् के उक्त कथनसे सिद्ध होता है कि ज्ञानका अङ्ग भक्ति है।

ज्ञानाद् भक्तिस्ततो ज्ञानमाहितातिशयं ननु ।
श्रीमद्भगवतः प्राप्तौ मुख्यं भवतु साधनम् ॥१४॥
मैवं भगवता प्रोक्तं 'भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया' ।
भक्त्यङ्गं च ततो ज्ञानं भक्तौ ज्ञानाङ्गता न तत् ॥१५॥

अतः मोक्षकी सिद्धिमें भक्तिकी प्रधानता कैसे हो सकती है ? इसके उत्तरमें कहा जाता है कि—ऐसा नहीं कह सकते हैं, क्योंकि पर्वभेद से भक्ति और ज्ञान दोनों का साध्यसाधनभाव है। भक्ति से ज्ञान होता है। उस ज्ञानसे भक्तिमें अतिशय होता है। ज्ञान से अतिशयप्राप्त भक्ति भगवान्‌की प्राप्ति अर्थात् मोक्षमें मुख्यसाधन बनती है। इसलिये ज्ञानी लोग भक्तिको ज्ञानका अङ्ग नहीं मानते हैं ॥११॥ ॥१२॥१३॥

इस पर वादी कहता है कि—"ज्ञानसे भक्ति होती है। उस भक्तिसे ज्ञानमें अतिशय होता है। भक्तिसे अतिशयप्राप्त ज्ञान भगवान्‌की प्राप्तिमें अर्थात् मुक्तिमें मुख्यसाधन है" इसका समाधान किया जाता है कि--ऐसा नहीं कह सकते हैं, क्योंकि गीताके अष्टम अध्यायके बाईसवें श्लोकमें कहा है कि—"पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया" अर्थ—हे अर्जुन ? पर पुरुष अर्थात् परमात्मा अनन्यभक्तिसे प्राप्त करने योग्य है। अतः भक्तिका अङ्ग ज्ञान है। भक्तिमें ज्ञानाङ्गता नहीं होती है। अथात् भक्ति ज्ञानका अङ्ग नहीं है। क्योंकि भक्ति ही से परमात्माकी प्राप्ति होती है। अतः मुक्तिका मुख्यसाधन भक्ति है ॥१४॥१५॥

अङ्गाङ्गिता मता यस्मादुभयोर्भक्तिबोधयोः ।
निरस्तौ तत् तयोर्ज्ञेयौ विकल्पश्च समुच्चयः ॥१६॥
विकल्पो न यतस्तस्मिन्नष्ट दोषा भवन्ति हि ।
व्यभिचारो भवेत् तस्मात् स्वीकृतो न समुच्चयः ॥१७॥

भक्ति और ज्ञानका अङ्गाङ्गीभाव माना गया है। अतः उनदोनोंके अर्थात् भक्ति और ज्ञानके विकल्प और समुच्चयका निरास (खण्डन) हुआ जानना चाहिये ॥१६॥

ज्ञान और भक्तिके विकल्पवादका खण्डन

विकल्प के माननेमें आठ दोष होते हैं अतः भक्ति और ज्ञानकी तुल्यबलवत्ता होने पर भी उन दोनोंका विकल्प नहीं माना जाता है।

कोई गति न होने पर कहीं कहीं अष्टदोषदुष्ट होने पर भी विकल्पका स्वीकार किया जाता है। यथा—अष्टाकपाल आग्नेय पुरोडाशके यागाङ्गरूपसे विहित होने पर उस पुरोडाशके मूलकारण द्रव्यकी आकांक्षा होती है। यदि कोई नियम न होता तो किसी भी द्रव्यसे वह पुरोडाश बनाया जा सकता। किन्तु वहाँ पर "व्रीहिभिर्यजेत" (व्रीहिसे याग करना चाहिये।) इस प्रकारकी विधि होने से व्रीहिरूप द्रव्य उस पुरोडाश के लिये नियत होता है। इसी प्रकार "यवैर्यजेत" (यवसे याग करना चाहिये) इस प्रकारकी विधिके वहाँ पर होनेसे यवरूप द्रव्य भी उस पुरोडाशके लिये नियत होता है। यहाँ पर पुरोडाशनिर्माणरूप एक ही कार्यके लिये व्रीहि और यव दो द्रव्योंके प्राप्त होनेसे पाक्षिकप्राप्तिरूप विकल्पका स्वीकार किया जाता है।

व्रीहिवाक्य और यववाक्य में दो यजुग्रहणकी व्यर्थता होनेसे व्रीहि और यव दोनोंका साथ ही विधान नहीं माना जा सकता है।

विकल्पके आठ दोष

१—प्रामाण्यपरित्याग २—अप्रामाण्यस्वीकार ३—त्यक्तप्रामाण्य-स्वीकार ४—स्वीकृत अप्रामाण्यका त्याग, ये चार दोष दोनोंमें से प्रत्येक शास्त्रमें होते हैं। यथा—ऊपर कथित स्थलमें व्रीहिके अनुष्ठानसमयमें यवशास्त्रके स्वार्थानुष्ठापकत्वरूप प्रामाण्यका त्याग और स्वार्थाननुष्ठाप-कत्वरूप अप्रामाण्यका स्वीकार किया जाता है। तथा यवके अनुष्ठान के समयमें यवशास्त्रके त्यक्त प्रामाण्यका स्वीकार और स्वीकृत अप्रा-माण्यका त्याग किया जाता है। ये चार दोष यवशास्त्रहें हुए।

यवके अनुष्ठानसमयमें व्रीहिशास्त्रके स्वर्थानुष्ठापकत्वरूप प्रामाण्यका त्याग और स्वार्थाननुष्ठापकत्वरूप अप्रामाण्यका स्वीकार किया जाता है। तथा व्रीहिके अनुष्ठानसमयमें व्रीहिशास्त्रके त्यक्त प्रमाण्यका स्वी-कार और स्वीकृत अप्रामाण्यका त्याग किया जाता है। ये चार दोष व्रीहिशास्त्रमें हुए। इसप्रकार विकल्पके कुल आठ दोष होते हैं। कोई गति न होनेपर आठ दोषवाला होने पर भी विकल्पका स्वीकार किया जाता है।

ज्ञानको भक्तिका अङ्ग मान लेने पर कोई आपत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती है। इसलिये ज्ञान और भक्तिका मुक्तिसाधनेमें विकल्प नहीं माना जाता है, क्योंकि विकल्पमाननेमें आठ दोष प्राप्त होते हैं।

'यस्य देवे परा भक्ति' रेवं भक्तिः श्रुतीरिता।
इन्द्रादिविषया सा किम् ? श्रीरामविषयाऽथवा ? ॥१८॥
गुरुशब्दसहोक्तिर्हि पक्षश्चान्त्यो वरं ततः।
'आचार्यं मामि' ति प्रोक्ता गुरावीशस्वरूपता ॥१९॥

ज्ञानभक्तिसमुच्चयवाद का खण्डन

ज्ञान और भक्तिका समुच्चय भी नहीं माना जाता है। इसका कारण यह है कि कारणके अभाव होने पर भी यदि कार्य होवे तो व्यतिरेकव्यभिचार दोष होता है। ऊपर कह चुके हैं कि ज्ञानके न होने पर भी शबरी आदिकी मुक्ति हो गई है। इसलिये यदि ज्ञानको मोक्षरूपकार्यका कारण माना जायगा तो उक्तस्थलमें व्यतिरेकव्यभिचार दोष होगा। अतः ज्ञानको मोक्षका कारण न मानकर मोक्षके मुख्यसाधन भक्ति का अङ्ग मानते हैं ॥१७॥

श्रीरामभक्ति ही परा भक्ति है।

"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥" (श्वेताश्वतर ६।२३) अर्थ—जिसकी देवमें पराभक्ति है। यथा देवमें है तथा गुरुमें हो। तो उस महात्माको ये पूर्वमें कहे हुए समस्त अर्थ प्रकाशित होते हैं। यहाँ पर संशय होता है कि—अर्थ प्रकाशके हेतुरूपसे श्रुतिमें सुनी हुई देवकी जो परा भक्ति है, वह इन्द्रादिदेवविषयक है ? अथवा श्रीरामविषयक है ? ॥१८॥

उक्त प्रकारके संशयकी निवृत्तिके लिये कहा जाता है कि— अन्तिम पक्ष ही श्रेष्ठ है अर्थात् उक्त परा भक्ति श्रीरामविषयक ही है इन्द्रादिदेवविषयक नहीं है। क्योंकि 'यथा देवे तथा गुरौ' इस प्रकार

ततस्तत्र हि सादृश्यं शार्ङ्गिणो न तु वज्रिणः ।
तद् रामविषया भक्तिर्नेन्द्रादिविषया हि सा ॥२०॥
भक्तिज्ञानद्वयाङ्गं तद् योगश्चापेक्ष्यते द्वयोः ।
विक्षिप्तचित्तलोकानामुभयेषामसम्भवः ॥२१॥
मोक्षस्य साधनं मुख्यं तस्माद् योगो न मन्यते ।
अङ्गाङ्गिता मताङ्गानां प्राज्ञवर्यैः प्रयाजवत् ॥२२॥

श्रुतिमें देवशब्दके साथमें गुरु शब्दका कथन है। गुरुदेव तो भगवान्‌के स्वरूप हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है कि—"आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित। न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥" (भागवत ११।१७।२७) अर्थ—भगवान् कहते हैं कि आचार्यको अर्थात् श्रीगुरुदेवको मेरा स्वरूप हो मानना चाहिये। उनका कभी तिरस्कार न करना चाहिये। मनुष्यबुद्धिसे श्रीगुरुदेव की असूया न करनी चाहिये, क्योंकि श्रीगुरुदेव सर्वदेवमय हैं। इस प्रकार गुरुदेवमें ईशस्वरूपता कही गई है। अतः श्रीगुरुदेवमें शार्ङ्गधर भगवान् श्रीरामजी की ही महिमा होती है वज्रधारी इन्द्रकी नहीं; अतः वह परा भक्ति श्रीरामविषयक ही है इन्द्रादिदेवविषयक नहीं है।१९।२०।

भक्ति ही मुक्तिका मुख्यसाधन है योग नहीं।

अब कहा जाता है कि—ज्ञानके सदृश चित्तवृत्तिनिरोधात्मक योग भी मुक्तिका साक्षात् साधन नहीं है, क्योंकि विक्षिप्तचित्तवाले लोगोंको न भक्ति होती है न ज्ञान ही होता है। अतः चित्तवृत्ति-निरोधरूप योग भक्ति और ज्ञान दोनों में अपेक्षित है। अतः भक्ति

उक्ता समाधिसंसिद्धिरीश्वरप्रणिधानतः ।
योगसूत्रे, ततो भक्तौ योगाङ्गतैव मन्यताम् ॥२३॥
मैवं समाधिसिद्धिर्यद् गौण्या भक्त्या न मुख्यया ।

और ज्ञान दोनोंका अङ्ग योग है। इसलिये मोक्षका मुख्यसाधन योग नहीं माना जाता है।

'ज्ञान भक्तिका अङ्ग है' ! यह पूर्वमें कहा जा चुका है। यहाँ पर कहा गया कि 'योग' भक्ति और ज्ञान दोनोका अङ्ग है। इसमें शङ्का होती है कि भक्तिका अङ्गरूप योग भक्तिके अङ्गरूप ज्ञानका अङ्ग कैसे होगा ? तात्पर्य यह है कि अङ्गों की अङ्गाङ्गिता कैसे बन सकती है ?

इस शङ्काके समाधान रूपमें कहा जाता है कि— विद्वानोंने प्रयाजके समान अङ्गों की भी परस्परमें अङ्गाङ्गिता मान ली है। तात्पर्य यह है कि जैसे प्रयाजकर्म वाजपेयका अङ्ग है और वाजपेयके अङ्गरूप दीक्षणीयादि का भी अङ्ग है। उस प्रकार योग भक्तिका अङ्ग है और भक्तिके अङ्गभूत ज्ञानका भी अङ्ग है। अतः कोई दोष नहीं है ॥२१॥२२॥

वादी पुनः पूर्वपक्ष (शंकापक्ष) करता है कि—"समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ।" (योगसूत्र) इस योगसूत्र में ईश्वरप्राणिधानरूप भगवद्भजनको समाधिरूप योगका कारण कहा गया है। अतः भक्तिको ही योगका अङ्ग मानना चाहिये। इस लिये योगको भक्तिका अङ्ग कहना उचित नहीं है ॥२३॥

उक्त प्रकारके वादीके पूर्वपक्षके समाधानरूपसे कहा जाता है

गौणी सा नवधा बोध्या श्रवणादिविभेदतः ॥२४॥
निर्विकल्पसमाध्याख्या पराभक्तिर्भवेत् ततः ।
परानुरागरूपा सा नाङ्गं किन्त्वङ्गिनी मता ॥२५॥

कि—समाधिद्रि गौणी भक्तिसे होती है अर्थात् समाधिसिद्धिमें कारण गौणी भक्ति है मुख्यभक्ति नहीं। गौणी भक्ति श्रवण कीर्तन आदि भेदोंसे नवप्रकारकी है।

नवधा भक्ति

श्रीमद्भागवत में नवधा भक्तिके विषयमें श्रीप्रह्लादजी ने कहा है कि—

"श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।
इतिपुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥"

अर्थ—भगवान्का श्रवण कीर्त्तन स्मरण पादसेवन अर्चन वन्दन दास्य सख्य और आत्मनिवेदन इसप्रकारकी नवप्रकारकी भक्ति यदि अध्ययन किए हुए पुरुषद्वारा भगवान् विष्णुमें अर्पितकी हुई की जाय तो मैं उत्तम अध्ययन मानता हूँ।

१-**श्रवणभक्ति**—भगवान् श्रीरामजी के नाम रूप लीला और धामकी कथा के श्रवण करनेको **श्रवणभक्ति** कहते हैं।

श्रवणभक्तिके विषय में श्रीशुकदेवजी ने कहा है कि—

" पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां
कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतम्।

पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं ॥
व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ।"
(भा. २।२।३७)

अर्थ—जो लोग सन्तोंके आत्मारूपसे प्रकाशित भगवान्के कथा-मृत को श्रवणपुटों में भर भर कर पीते हैं, वे लोग विषयोंसे दूषित हुए अपने अन्तःकरणको पवित्र करते हैं तथा भगवान्के चरणकमलों की सन्निधि को प्राप्त होते हैं।

२—**कीर्त्तनभक्ति**—भगवान् श्रीरामजी के नाम और गुणोंके कीर्त्तन करनेको **कीर्त्तनभक्ति** कहते हैं।

कीर्तनभक्तिके विषयमें श्रीमद्भागवतमें कहा है कि—

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोक यशोऽनुगीयते ॥
(भा० १२।१२।४९)

जिसमें पवित्रकीर्त्तिवाले भगवान्का यश गाया (कीर्त्तितकिया) जाता है, वही बाणी नयी नयी रुचिकर और रमणीय लगती है, वही निरन्तर मनके महोत्सवरूप होती है और वही मनुष्योंके शोकसमुद्र को सुखाने वाली होती है।

३——**स्मरणभक्ति**—भगवान् श्रीरामजीके नाम रूप और चरित्रके निरन्तर चिन्तनको **स्मरणभक्ति** कहते हैं।

स्मरणभक्तिके विषयमें श्रीमद्भागवतमें कहा है कि—

"तस्मात् सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम्।
म्रियमणो ह्यवहितः ततो यासि परां गतिम्॥"

(भा० १२।३।८)

अर्थ—इसलिये हे राजन्! सर्वप्रकारसे भगवान्को हृदयस्थ करो अर्थात् भगवान्का स्मरण करो। उससे तुम मरते हुए भी सावधान रहोगे और परा गति अर्थात् मुक्तिको प्राप्त हो जाओगे।

४—पादसेवनभक्ति—भगवान् श्रीरामजीके चरणारविन्दोंकी सेवाको **पादसेवनभक्ति** कहते हैं।

पादसेवनभक्तिके विषयमें श्रीमद्भागवतमें कहा है कि—

"इत्यच्युताङ्घ्रि भजतोऽनुवृत्त्या
भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः।
भवन्ति वै भागवतस्य राजन्
ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात्॥

(भा० ११।२।४३)

अर्थ—हे राजन् इस प्रकार पुनः पुनः भगवान्के पादोंकी सेवा करनेवाले भगवद्भक्तको वैराग्य भगवत्तत्त्वज्ञान तथा भक्ति पदार्थ प्राप्त होते हैं। तत्पश्चात् वह भगवद्भक्त परा शान्ति अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है।

५—अर्चनभक्ति—भगवान् श्रीरामजीके षोडशोपचारसे पूजनको **अर्चनभक्ति** कहते हैं।

अर्चनभक्तिके विषयमें श्रीमत्भागवतमें भगवानने स्वयं कहा है कि—

“ एवं क्रियायोगपथैः पुमान् वैदिकतान्त्रिकैः ।
अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सितम् ॥”
(भाग० ११।२७।४८)

अर्थ—भगवान् कहते हैं कि—इस प्रकार वैदिक तान्त्रिक पूजन-विधियों से मेरा अर्चन (पूजन) करता हुआ पुरुष इस लोक तथा परलोकको स्वाभिलषित सिद्धिको मुझसे प्राप्त करता है ।

६——**वन्दनभक्ति**—धूलि तथा कीचड़का विचार किये बिना ही भगवान् श्रीरामजीके सन्मुख दण्डवत् पड़कर प्रणाम करनेको **वन्दनभक्ति** कहते हैं ।

वन्दनभक्तिके विषयमें श्रीमद्भागवतमें श्री ब्रह्माजीका कथन है कि—

“ ततोऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन् नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥”
(भाग. १०।१८।८)

अर्थ—श्रीब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवन् अतः जो पुरुष स्वकृत कर्मके फलको भोगता हुआ तथा तुम्हारी दयाकी प्रतीक्षा करता हुआ हृदय वाणी और शरीरसे तुम्हें नमस्कार करता हुआ स्वजीवन-यापन करता है, वही मुक्तिपदका अधिकारी है ।

७——**दास्यभक्ति**—मान और मोहसे रहित होकर दासके समान

निरन्तर भगवान् श्रीरामजीकी सेवामें तत्पर रहनेको **दास्यभक्ति** कहते हैं।

दास्यभक्तिके विषयमें दुर्वासा ऋषिने कहा है कि—

"यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते॥"

(भाग. ९।५।१६)

जिन भगवान् का नाम सुनने मात्रसे पुरुष निर्मल (पापरहित-पवित्र) हो जाता है और जिन भगवान्के चरणकमलोंमें सर्वतीर्थों का वास है उन भगवान्के दासोंको कौनसा पदार्थ अलब्ध रह जाता है? अर्थात् उन्हें मुक्तिपर्यन्तके सर्व पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं।

८—**सख्यभक्ति**—केवट विभीषणादिके सदृश भगवान् श्रीरामजीमें देह स्त्री पुत्र धन तथा राज्यादिसे भी अधिक स्नेह करनेको **सख्य-भक्ति** कहते हैं।

सख्यभक्तिके विषयमें श्रीमद्भागवतमें कहा है कि—

"एवं मनः कर्मवशं प्रयुंक्ते
अविद्ययाऽऽत्मन्युपधीयमाने।
प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे
न मुच्यते देहयोगेन तावत्॥"

(भाग. ५।५।६)

अर्थ—जब तक इस प्रकार अविद्यासे आत्मा आच्छादित रहता है तबतक मन पुरुषको कर्मवश करता है। अतः जब तक मुझ सर्वेस्वर वासुदेवमें प्रेम नहीं होता है तब तक देह सम्बन्धसे नहीं छूटता है अर्थात् मुक्त नहीं होता है।

भवबन्धस्य हेतुत्वाद् रागो हेयतया मतः ।
रागत्वाद् वर्जनीयैव सेशभक्तिर्बुधैर्नतु ॥३६॥

९—**आत्मनिवेदनभक्ति**—वैराग्यपूर्वक अपने तन, मन, धन, जन ओर स्वयंको भी सर्वथा भगवान् श्रीरामजीके समर्पण कर देनेको **आत्मनिवेदनभक्ति** कहते हैं ।

आत्मनिवेदनभक्तिके विषयमें श्रीमत्भागवतमें भगवान्का कथन है कि—

"मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पते वै ॥

(भाग. ११।२९।३४)

अर्थ— भगवान कहते हैं कि जब मनुष्य सर्वकर्मोंको त्यागकर विशेषकरनेकी इच्छावाला हो कर स्वात्माको मेरे समर्पण कर देता है, तब वह मोक्षको प्राप्त हो जाता है और मेरे समान ऐश्वर्यवाला हो जाता है ।

उक्त नव प्रकारकी गौणी भक्तिसे अर्थात् साधनभक्तिसे उत्पन्न जो भगवान्में गाढ स्नेह (परानुराग) है, वह निर्विकल्पसमाधि रूप परा भक्ति है । वह अङ्गीरूप है अङ्गरूप नहीं है । अङ्ग रूप तो नव प्रकारकी गौणी भक्ति है ॥२४॥२५॥

अनुरागरूपहोनेपर भी भक्ति त्याज्य नहीं है

वादी शंका करता है कि—भवबन्धका हेतु होनेसे राग—अनु-

नैवमिच्छात्मको रागो दुष्टोऽनर्थकरो यतः।
भक्तिः प्रीत्यात्मको रागो राघवस्तस्य चाश्रयः ॥२७॥
सर्वोत्तमः स सर्वेशो निर्दोषो गुणसागरः।
निःश्रेयसस्य संसिद्धिस्तस्य चाधिगमेन हि ॥२८॥

रागको हेय-त्याज्य माना गया है। अतः बुद्धिमानोंको अनुरागरूप होनेसे भगवद्भक्तिको त्याग देना चाहिये ॥२६॥

वादीकी उक्त प्रकारकी शंकाका समाधान किया जाता है कि– उक्त प्रकारसे कहना उचित नहीं है। क्योंकि अनर्थका हेतु होनेसे इच्छारूप अनुराग ही दोषवाला होता है। भगवद्भक्ति तो इच्छारूप अनुराग नहीं है किन्तु प्रीतिरूप अनुराग है। प्रीत्यात्मक अनुराग-रूप भगवद्भक्तिके आश्रय भगवान् श्रीराघवेन्द्र हैं ॥२७॥

वे सर्वेश्वर श्रीराघवेन्द्र भगवान् तो सर्वथा दोषरहित हैं और कल्याणगुणोंके सागर हैं। अतः स्वरूप और गुण दोनोंसे सर्वोत्तम हैं। उनकी प्राप्तिसे ही मोक्षकी सिद्धि होती है। यह अच्छी प्रकारसे ध्यानमें रखना चाहिए कि सिद्धान्तमें भगवत्प्राप्ति भगवत्कैंकर्यरूप मानी गई है ॥२८॥

इसलिए अर्थात् भक्तिरूप अनुरागके आलम्बन भगवान् श्रीरा-घवेन्द्रके कल्याणगुणसागर और दोषरहित होनेसे भक्तिरूप अनुराग में दोष नहीं माना गया है। अतः भगवद्भक्ति त्याज्य नहीं है किन्तु उपादेय ही है। क्योंकि आलम्बनके दुष्ट होनेसेही अनुरागमें दोष होता है। भगवद्विषयक अनुरागरूप भक्तिमें तो दोष किसी भी

भक्त्यात्मके च रागे हि तस्माद् दोषो न सम्मतः।
यत आलम्बने दुष्टे रागे भवति दूषणम् ॥२९॥
तपःप्रभृतिसर्वेभ्यः साधनेभ्यश्च सम्मतम्।
भगवद्भजनं श्रेष्ठं परानुरागपूर्वकम् ॥३०॥
स्वयं भगवता यस्माद् गीतायां स्वमुखादिह।
ज्ञापितं भजने स्वस्य श्रैष्ठ्यमधिकशब्दतः ॥३१॥

प्रकारसे नहीं होता हैं। भगवान्‌ने श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध में स्वयं ही कहा है कि—

"न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिताः क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेष्यते॥"

अर्थ--भगवान कहते हैं कि—जैसे भूंजे हुए और उबाले हुए दाने अंकुरजननके समर्थ नहीं होते हैं उसी प्रकार बुद्धिको मुझमें लगाने वाले लोगोंका काम भी कामके लिए नहीं होता है।

अतः भगवद्भक्तिका त्याग कभी भी न करना चाहिऐ ॥२९॥

सर्वसाधनोंसे श्रेष्ठसाधन भक्ति है

तप ज्ञान इत्यादि सभी साधनोंसे परानुरागपूर्वक भगवानके भजनको ही श्रेष्ठ माना गया है ॥३०॥

परानुरागपूर्वक भगवद्भजनके तप ज्ञान आदि सभी साधनोंसे श्रेष्ठ मानने में हेतु यह है कि-स्वयं भगवानने गीतामें स्वमुखसे ही अधिकशब्द द्वारा स्वभजनमें अन्यसाधनोंसे श्रेष्ठता बतलाई है। भगवानने कहा है कि—

" तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन।"

(गीता अ. ६ श्लो. ४६)

अर्थ--भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! योगी, तपस्वियों, ज्ञानियों तथा कर्मियों अर्थात् कर्म करनेवालों से श्रेष्ठ है अतः तू योगी हो जा।

श्रीसम्प्रदायके प्रधानाचार्य आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी यतीन्द्रने भी इस श्लोकके स्वरचित श्रीआनन्दभाष्यमें कहा है कि—

,,योगिनस्तपस्विप्रभृतिभ्यः श्रेष्ठतामाह- तपस्विभ्य इति। योगी तपस्विभ्यः केवलतपोनिष्ठेभ्योऽधिकः श्रेष्ठः। केवलतपःसाधितपुरुषार्थाधिकपुरुषार्थसाधनविशिष्टतया योगी तपस्विभ्यः श्रेयानित्यर्थः। एवं ज्ञानिभ्यः केवलशास्त्रजन्यज्ञानविशिष्टेभ्योप्यधिकः। कर्मिभ्यः केवल–कर्मानुष्ठातृभ्यश्चाधिको मतः। हे अर्जुन! तस्मात् त्वं योगी भव॥"

(गीता का आनन्दभाष्य ६।४६)

अर्थ—आनन्दभाष्यकार श्रीरामानन्दाचार्यजी आचार्यसार्वभौम कहते हैं कि—'तपस्विभ्योऽधिको योगी' इसश्लोकसे भगवान् तपस्वी इत्यादिकोंसे योगीकी श्रेष्ठताको कहते हैं। भगवान् कहते हैं कि--योगी केवलतपोनिष्ठोंसे श्रेष्ठ है। तात्पर्य यह है कि केवलतपद्वारासाधित पुरुषार्थसे अधिक पुरुषार्थके साधनसे विशिष्ट होनेसे योगी तपस्वी आदिकोंसे श्रेष्ठ है। इसी प्रकार ज्ञानियोंसे अर्थात् केवलशास्त्रजन्यज्ञा-

नवाले ज्ञानियोंसे भी योगी श्रेष्ठ है तथा केवलकर्मका अनुष्ठान करनेवाले कर्मकाण्डियोंसे भी योगी श्रेष्ठ है। हे अर्जुन इसलिये तू योगी हो जा।

"योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥"

(गीता अ० ६ श्लो० ४७)

"एवमात्मदर्शनमभिधाय विवेकादिसाधनसप्तकजन्यपरविद्याप्रस्तावं विदधाति—योगिनामिति । यो योगी मामपरित्यक्तात्ममहिमानं वाङ्मनसाऽनवच्छेद्यस्वरूपस्वभावमशेषदोषवर्जितनित्यानवधिकातिशयापरिमितकल्याणगुणगणार्णवं सर्वव्यापकं सर्वज्ञं सर्वशक्तिञ्च मां सर्वेश्वरं मद्गतेन मत्प्रवणेनान्तरात्मना मनसा श्रद्धावान् मय्यत्यधिकया प्रीत्या मदवाप्तिविषयकत्वरावान् सन् भजते । उपास्त इत्यर्थः । स सर्वेषां योगिनां सर्वेभ्योऽपि पूर्वोक्तेभ्यो योगिभ्यो मे मम युक्ततमः श्रेष्ठतमो मतः । ...."

(गीता का आनन्दभाष्य ६।४७)

अर्थ—आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी कहते हैं कि—इस प्रकारसे आत्मदर्शनको कह कर भगवान् "योगिनामपि सर्वेषां" इस श्लोकसे विवेकविमोक आदि भगवद्बोधायनोक्त साधनसप्तकजन्य परविद्या (भक्ति) के प्रस्तावको करते हैं। —जो योगी आत्ममहिमाको नहीं त्यागनेवाले—आत्ममहिमविशिष्ट बाणी और मनके अगोचर स्वरूप और स्वभाव वाले समस्तदोषवर्जित नित्य निरवधिक निरतिशय तथा अपरिमितकल्याणगुणगणोंके समुद्र सर्वव्यापक सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् मुझ सर्वेश्वरको मुझमें ही लगे हुए मनसे

अर्जुनेन च पृष्टं ये भक्ताश्चात्मपरात्मनोः ।

तेषां मध्ये प्रभो के हि श्रेष्ठा योगविदो मताः ॥३२॥

श्रद्धावान् होकर मुझमें अत्यन्त अधिक प्रीति–प्रेम से मुझको प्राप्त होने केलिये त्वरा–शीघ्रता से विशिष्ट हो कर भजता है अर्थात् उपासना करता है, उस योगी को मैं पूर्वोक्त सर्वयोगियोंसे श्रेष्ठतम मानता हूँ ।

इस प्रकारसे भगवान्ने स्वमुखसे ही गीतामें अधिकशब्दसे स्वभजनमें अन्यसर्वसाधनोंसे श्रेष्ठता कही है ॥३१॥

अर्जुनने भगवान्से पूछा कि—

" एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।

ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥"

(गीता १२।१)

हे भगवन् ! इस प्रकार निरन्तर भक्तियोगविशिष्ट जो भक्त तुम्हारी उपासना (भक्ति) करते हैं तथा जो लोग इन्द्रियोंसे नहीं ग्रहण करने योग्य अक्षर अर्थात् अविनाशी आत्मतत्त्वकी उपासना करते हैं उन्होंमें सबसे अधिक योगवित् कौन हैं ?

इस प्रकार अर्जुनने पूछा कि–हे प्रभो आत्मा और परमात्मा के जो भक्त हैं उन्होंमें श्रेष्ठ योगविद् आप किन्हें मानते हैं ? ॥३२॥

इस प्रकारसे अर्जुनके पूछने पर भगवान्ने कहा कि—

"मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥"

(गीता १२।२)

उक्तं भगवता ते मे भक्ता युक्ततमा मताः।
ये परश्रद्धया युक्ता मच्चिता मामुपासते ॥३३॥
प्रश्नेन चोत्तरेणाथ श्रीकृष्णार्जुनयोस्तथा।
भगवद्भजनस्यैव चाधिक्यं हि निरूपितम् ॥३४॥
योगं प्रति तथा ज्ञानं प्रति कर्म तपः प्रति।
श्रद्धायाश्च समानत्वाद् भक्तेस्तद्रूपता न हि ॥३५॥
श्रद्धाभक्त्योश्च नाभेदो मन्यतेऽथानवस्थितेः।

अर्जुनके प्रश्नके उत्तररूपसे भगवान् कहते हैं कि—जो लोग निरन्तर भक्तियुक्त होकर मुझमें मनको लगाकर परमश्रद्धायुक्त होकर मेरी उपासना करते हैं उन्हें मैं सर्वयोगियोंमें श्रेष्ठ मानता हूँ।

उक्त प्रकारके भगवान् श्रीकृष्णजी और अर्जुनके प्रश्नसे तथा उत्तरसे भगवद्भजनकी ही सर्वसाधानोंसे अधिकता प्रतिपादित की गई है ॥३३॥३४॥

श्रद्धासे योग करो, श्रद्धासे ज्ञान करो, श्रद्धासे कर्म करो, श्रद्धासे तप करो तथा श्रद्धासे भजन करो इत्यादि स्थलोंमें योग, ज्ञान, कर्म, तप तथा भक्तिके प्रति समानरूपसे श्रद्धाको अङ्गरूपसे माना जाता है इसलिये भक्तिको श्रद्धारूप नहीं माना जाता है क्योंकि पूर्वमें सिद्ध किया जा चुका है कि योग ज्ञान कर्म तथा तप आदि भक्तिके अङ्ग हैं। इसलिये योगादिके अङ्गरूपसे मानी हुई श्रद्धाको भक्तिरूप नहीं माना जाता है अर्थात् श्रद्धा और भक्ति एकरूप नहीं हैं किन्तु भिन्न भिन्न रूप हैं ॥३५॥

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रद्धा और भक्ति दोनों भिन्न भिन्न

अङ्गाङ्गिता भवेन्नापि चाभिन्नत्वे द्वयोस्तयोः ॥३६॥
कर्मब्रह्मसुकाण्डाभ्यां द्विधा वेदः समीरितः ।
उभयत्रासमाविष्टो भक्तिकाण्डो न वैदिकः ॥३७॥

हैं। अब कहा जाता है कि—श्रद्धा और भक्ति दोनों अभिन्न नहीं हो सकती हैं क्योंकि दोनों को अभिन्न मानने पर अनवस्था दोष होता है। वह इस प्रकार—गीतामें भगवान् ने कहा है कि—"श्रद्धावान् भजते यो माम्" (जो श्रद्धायुक्त हो कर मुझे भजता है।) गीताके इस भगवद्वचनसे 'श्रद्धा भक्तिका अङ्ग है' यह विदित होता है। यदि भक्तिको श्रद्धारूप मानेंगे तो उक्त भगवद्वचनानुसार भक्तिरूप श्रद्धा स्वाङ्गरूपसे अन्य श्रद्धाकी अपेक्षा करेगी। पुनः वह अपेक्षित श्रद्धा भी स्वाङ्गरूपसे अन्य श्रद्धाकी अपेक्षा करेगी, इस प्रकार अनवस्थारूप दोष प्राप्त होगा। अतः श्रद्धा और भक्तिको अभिन्न तत्त्व नहीं मानते हैं। अर्थात श्रद्धाको भक्तिरूप नहीं मानते हैं। 'श्रद्धावान् भजते यो माम्' इस गीता वचन से विदित होता है कि भक्तिमें अपेक्षित श्रद्धा भक्तिका अङ्ग है और भक्ति श्रद्धाकी अङ्गिनी है अर्थात् श्रद्धा और भक्तिका अङ्गाङ्गीभाव है। श्रद्धा और भक्ति दोनोंको अभिन्न मानने पर दोनोंकी अङ्गाङ्गिता न बनेगी। क्योंकि अङ्गाङ्गीभाव दो भिन्न वस्तुओंमें ही माना जाता है। अभिन्न अर्थात् एक ही तत्त्वमें अङ्गाङ्गीभाव कोई भी बुद्धिमान् नहीं मानता है। इसलिये श्रद्धा और भक्ति अभिन्न पदार्थ नहीं हैं ॥३६॥

"परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः

मैवमालम्बनं यस्माद् भक्तौ हि ब्रह्म राघवः।
बोधयितुं तथा ब्रह्म ब्रह्मकाण्डः प्रवर्त्तते ॥३८॥

कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥१२॥ तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय। येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥१३॥ (मु. १।२) (कर्मसे प्राप्त लोकोंकी परीक्षा करके ब्राह्मणको वैराग्य प्राप्त करना चाहिए कि— कृत यज्ञादिकर्मोंसे अकृत अर्थात् नित्य परब्रह्म प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उस ब्रह्मतत्त्वके ज्ञानके लिये हाथमें समिध् लिये हुए वह (वैराग्यप्राप्त ब्राह्मण) श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु के समीप जाय ॥१२॥ वह श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरु सम्यक् प्रशान्तचित्तवाले, बहिरिन्द्रियोंको जीतनेवाले तथा शरणमें आये हुए उस वैराग्यप्राप्त ब्राह्मणके लिये अक्षर तथा सत्य अर्थात् स्वरूप और गुणसे निर्विकार पुरुषको जिससे जाने उस ब्रह्मविद्याको यथार्थरूपसे उपदेश करे ॥१३॥ इस मुण्डक श्रुतिसे विदित होता है कि—कर्मकाण्ड और ब्रह्मकाण्ड इन दो भेदोंसे वेद दो प्रकारका कहा गया है। इन दो में से एकमें भी भक्तिकाण्डका समावेश नहीं हुआ है। अतः वादी शंका करता है कि 'भक्तिकाण्ड वैदिक नहीं है' ॥३७॥

वादीकी उक्त शंकाके समाधानरूपसे कहा जाता है कि वादी को ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि भक्तिमें आलम्बन पूर्णब्रह्म भगवान् श्रीराघवेन्द्र हैं। ब्रह्म अर्थात् भगवान् श्रीराम जी को उसरूप से अर्थात् भक्तिके आलम्बनरूपसे बोधन करनेके लिये ही वेदका

ब्रह्मकाण्डे समावेशो भक्तिकाण्डस्य तन्मतः
भक्तिश्च ब्रह्मविद्येति बादरायणसम्मतम् ॥३९॥
संविचारयता विद्याभेदान व्यासेन धीमता ।
अध्याये साधनाख्ये यद् भक्तेर्भेदा विचारिताः ॥४०॥
कुतश्चेदुच्यते भक्तौ ब्रह्मप्रापणशक्तितः ।
विचारस्तद्धि भक्तेश्च युक्तियुक्तोऽथ वैदिकः ॥४१॥

इत्युपनिषद्भाष्यकारपण्डितसम्राट्स्वामिश्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठा-
चार्यप्रणीते भक्तिवादे द्वितीयः परिच्छेदः ॥२॥

ब्रह्मकाण्ड प्रवृत्त है । इसलिये भक्तिकाण्डका समावेश ब्रह्मकाण्डमें माना गया है । 'भक्ति ब्रह्मविद्या है' यह बात भगवान् बादरायण (ब्रह्मसूत्रकार भगवान् वेदव्यास) को सम्मत अर्थात् अभिप्रेत है ॥३८॥३९॥

'भक्ति ब्रह्मविद्या है' यह बादरायणसम्मत है, इस प्रकार इसलिये कहा जाता है कि स्वनिर्मित ब्रह्ममीमांसाके साधननामक तृतीयाध्यायमें विद्याभेदोंका विचार (मीमांसा) करते हुए परम बुद्धिमान् भगवान् श्री व्यास जी ने भक्तिके भेदोंका ही विचार किया है ॥४०॥

यदि कहो कि श्रीव्यास जी ने भक्तिको ब्रह्मविद्या क्यों माना है ? तो इसके उत्तरमें कहा जाता है कि—भक्तिमें ही ब्रह्मको प्राप्त करानेकी शक्ति है । इसलिए भगवान् बादरायणने भक्तिको ही ब्रह्म-विद्या माना है । गीतामें कहा है कि—'भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया'

अथ तृतीयः परिच्छेदः

अङ्गानि श्रवणादीनि रामे सुदृढबुद्धये ।
विधेयान्यामनःशुद्धि व्रीहीणामवघातवत् ॥१॥
गुरूपसदनादीनि तेषामङ्गानि चापि हि ।
बुद्धिमद्भिर्विधेयानि बुद्धिदार्ढ्यस्य सिद्धये ॥२॥

भगवान् (श्रीराम जी) अनन्य भक्तिसे ही प्राप्त होते हैं । इसलिए भक्तिका विचार युक्त तथा वैदिक ही है ॥४१॥

इत्युपिनषद्भाष्यकार पण्डितसम्राट् स्वामि-
श्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठाचार्यविरचितायां
विजयमालाख्यायां व्याख्यायां
द्वितीयः परिच्छेदः ॥२॥

भक्तिके मुख्य और अमुख्य अङ्ग

भक्तिके अङ्ग दो प्रकारके हैं– मुख्य और अमुख्य । "मेरे तो गृहक्षेत्रादिवत् सर्व विध अनुकूल भगवान् श्रीराम ही हैं ।" इस प्रकार की निश्चयात्मिका बुद्धि ही भक्तिका मुख्य (अन्तरङ्ग) अङ्ग है । अर्थात् उक्त प्रकारकी सुदृढ बुद्धि ही भक्तिमें साक्षात् अपेक्षित अङ्ग है। 'आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इस श्रुतिसे विहित भगवान्के श्रवण मनन और निदिध्यासन अथवा भगवान्के श्रवण कीर्त्तन स्मरण इत्यादि भक्ति के अमुख्य (बहिरङ्ग) अङ्ग हैं । अर्थात् श्रवण इत्यादि भक्तिमें परम्परया अपेक्षित अङ्ग हैं ॥१॥

जैसे यज्ञके अङ्गरूप पुरोडाश बनाने के लिये व्रीहि (धान) को छिलकेसे रहित करनेके लिये 'व्रीहीनवहन्ति' इस श्रुतिसे विहित

मुख्यामुख्यविभेदाभ्यां भक्तेरङ्गं द्विधेरितम् ।
'श्रीरामः सर्व'मित्येषा मतिस्तत्रादिमं मतम् ॥३॥

व्रीहिका अवघात (कूटना) अच्छी प्रकार से व्रीहिके छिलकेसे रहित होने पर्यन्त किया जाता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीराममें उक्तप्रकार की सुदृढ़बुद्धि के उत्पन्न होने के लिये मनकी शुद्धि पर्यन्त श्रवण इत्यादि भक्तिके अप्रधान अंगोंको करना ही चाहिये ॥२॥

'भगवान् श्रीराम ही हमारे सबकुछ हैं।' इस प्रकारकी सुदृढ बुद्धि भगवान्‌के भक्त महात्माओंकी सदैव रहती है। प्रमिताक्षरावृत्तिकार जगदगुरु श्रीदेवानन्दाचार्यजी ने भी कहा है कि—

"त्वमेवासि वित्तं च विद्या त्वमेव
त्वमेवासि माता पितापि त्वमेव ।
त्वमेवासि हे नाथ ! सर्वं मम त्वां
श्रये राघवं सच्चिदानन्दरूपम् ॥"

उक्त प्रकारकी निश्चयात्मिका बुद्धि ही भगवद्भक्तिका प्रधान अङ्ग है। यह ऊपर कहा जा चुका है। उस सुदृढबुद्धिके अङ्गरूप श्रवण मननादि भक्तिके अप्रधान अङ्ग हैं, यह भी ऊपर कहदिया गया है। अब कहा जाता है कि बुद्धिमानोंको उक्तबुद्धिकी दृढताकी सिद्धिकेलिये 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्'। (उस ब्रह्मतत्त्वके जानने के लिये गुरु देवके समीपमें ही जाना चाहिये।) इस श्रुतिसे विधान किये हुए उन श्रवणादि अङ्गोंके अङ्गस्वरूप गुरुसमीपगमन तथा प्रशान्तचित्तत्व आदि को भी करना चाहिए। यहाँ पर गुरुसमीपगमनादिके आदि शब्दसे प्रशान्तचित्तत्वादिके सदृश सन्तसमागमको भी जानना चाहिए। क्योंकि

ब्रह्मणो रामचन्द्रस्य सर्वेशत्वाद्धि काश्यपः।
तामैश्वर्यपरामेव मुक्तिदां मन्यते मतिम् ॥४॥

गुरुसमीपगमनके सदृश साधुसमागमसे भी श्रवणादि की प्राप्ति होती है। श्रीसम्प्रदाय–शिरोमणि कविसम्राट्ट पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदास जो ने भी कहा है कि–

बिन सत्सङ्ग न हरिकथा तेहि बिन मोह न भाग
मोह गये बिन राम पद होइ न दृढ अनुराग॥

अत. बुद्धिमान् पुरुषोंको उक्तबुद्धिकी दृढताकेलिये श्रवणादिके अङ्गभूत गुरुप्रपत्ति, प्रशान्तचित्तत्व तथा साधुसमागम इत्यादिकों को भी करना चाहिये ॥३॥

सुदृढ़बुद्धिके अवलम्बनके विषयमें मतभेद

"क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः" (क्षर अर्थात् क्षरणशील स्वाभाववाला प्रधानतत्त्व (माया) है, विषयोंको भोग्य रूपसे हरण करनेवाला आत्मा (हर) ही अमृत और अक्षर स्वरूप है तथा उन प्रधान और आत्माका नियामक-ईश्वर एक देव है।) "स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः (वह परमात्मा ही सर्वका कारण है, करणों (इन्द्रियों) के अधिप चेतनका भी वह स्वामी है। उस परमात्माका उत्पादक (कारण) और स्वामी कोई भी नहीं है। इत्यादि श्रुतियाँ भगवान् श्रीराम जी को सर्वेश्वर कहती हैं। भगवान् श्रीरामके सवेश्वर होने से कश्यप मुनि ' यः सर्वज्ञः सर्ववित्" (जो ईश्वर सर्वविषयक सामान्यज्ञानवाला तथा सर्वविषयक विशेषज्ञानवाला

आत्ममात्रपरां बुद्धिं श्रवणमननादिजाम् ।
मन्यते मुक्तिदां तां च भगवान् बादरायणः ॥५॥

है ।) " परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च । (इस ईश्वरकी सर्वसे उत्कृष्ट विविध शक्ति, ज्ञान, बल और क्रिया स्वाभाविक सुनी जाती है ।) " भीषाऽस्माद् वातः पवते भीषोदेति सूर्यः (उस ईश्वर के भयसे पवन सदा बहता रहता है तथा उसके भयसे सूर्य नियमसे उदित होता है ।) " यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म " (यह समस्त भूत जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्नहुए जिससे जीवित रहते हैं, जिसके प्रति जाते हैं तथा जिसमें लयको प्राप्त होते हैं वह ब्रह्म है उसे जानो) इत्यादि श्रुतिसमुदायसे प्रतिपादित भगवदैश्वर्य को अवलम्बन करने वाली उक्त निश्चयात्मिका बुद्धिको ही मुक्तिप्रदायिनी मानते हैं ॥४॥

भगवान् बादरायण तो श्रवणमननादिसे उत्पन्न हुई आत्मामात्रको अवलम्बन करने वाली उक्त निश्चयात्मिका बुद्धिको मुक्तिदात्री मानते हैं । स्वनिर्मित ब्रह्म मीमांसाके चतुर्थाध्यायमें उन्होने कहा है :—

" आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च" (ब्रह्मसूत्र ४।१।३)

आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जी ने ब्रह्मसूत्रोंके आनन्द भाष्य' में कहा है किः—

"अथैवं ध्यानवृत्तिनिष्पत्त्यनन्तरं किं निदिध्यासनकाले उपास्यं ब्रह्मोपासकेन स्वान्यत्वेनोपासनीयमाहोस्वित् स्वात्मनेति सन्देहे स्वान्यत्वेनेति । कुतः? "ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ" (श्वे. १।८)"अस्मान्मायी सृजते

विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः ।" (श्वे. ४।८) "समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः । जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥" (श्वे.४।७) इत्येवमादि श्रुतिभिः 'अधिकं तु भेदनिर्देशात् ।' (ब्रह्मसूत्र २।१।२२) नेतरोऽनुपपत्तेः (ब्र.सू १।१।१७) इत्यादिसूत्रैश्चोभयोर्भेदस्यावगमात् । अतो यथाशास्त्रमेव यथावस्थितं ब्रह्मोपास्यम् । नान्यथा ।" "यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः । न सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ (गी०) इति भगवद्वचनविरोधात् । तस्मादन्यत्वेनोपास्यमिति प्राप्तेऽभिधीयते—आत्मेति त्विति । तु शब्दोऽवधारणार्थकः । उपासकेन स्वात्मतयैवोपास्यं ब्रह्म । यथा स्वीयशरीरस्यात्मोपासिता प्रत्यगात्मा तथोपासितुरप्यात्मा ब्रह्मेति ममात्मा ब्रह्मेत्येवमुपासीतेति तदर्थः । कथमवगम्यते ? उपगच्छन्त्येवमेव पूर्वतनाः समुपासकाः । "त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते अहं वै त्वमसि" इत्युपासकस्य स्वरूपेण स्वभावेन च भिन्नमपि ब्रह्माहमित्येवोपासका अभ्युपगच्छन्तीति । कथञ्च तदभ्युपगम इत्याह—ग्राहयन्ति चेति । एवमेव श्रुतय उपासकानवबोधयन्ति । "ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्" (छा० ६।८।४) "य आत्मनि तिष्ठान्नात्मनोतन्रो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।" (बृ० ३।७।२२) इत्यादिश्रुतयः सर्वस्य चिदाचिदात्मकस्य जगतः शरीरतया परमात्मनश्च तदात्मतया प्रतिपादयन्ति । यथा स्वशरीरं प्रति प्रत्यगात्मन आत्मत्वात् 'देवोऽहम' 'मनुष्योऽह'मित्यनुसन्धानं तथा परमात्मनोऽप्यात्मत्वादहमित्येवानुसन्धानम् । (एतच्च "त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते

अहं वै त्वमसि भगवो देवते" "अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद" (बृ०१।४।१०) "सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनस्सर्वं वेद" (बृ०४।५।७) इत्याद्यनेकश्रुतिभिरुपपादितम्। तथा चायमर्थः फलितः। स्वात्मनः स्वशरीरादाधिक्येनानुसन्धानम्। ततोऽप्याधिक्येनात्मशरीरस्य परमात्मनोऽनुसन्धानमिति पार्थक्यमपि "पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा" (श्वे०१।६) इति श्रुत्युपदिष्टमनुष्ठितम्भवति। तस्मादुसपाकेनात्मतया ब्रह्मोपासनीयमिति।"

(आनन्दभाष्य ४।१।६)

अर्थ– आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जी कहते हैं कि– इसप्रकार ध्यानकी आवृत्तिके होनेके अनन्तर निदिध्यासनकालमें उपास्यब्रह्मको उपासक स्वान्यरूपसे उपासना करे अथवा स्वात्मरूपसे? इस प्रकारसे संशय होने पर पूर्वपक्षरूपसे कहा जाता है कि– स्वान्यरूपसे।

शङ्का–उपासक ब्रह्मकी उपासना स्वान्यरूपसे क्यों करे?

उत्तर– ब्रह्म ज्ञ अर्थात् सर्वज्ञ है और जीव अज्ञ अर्थात् अल्पज्ञ है। 'ब्रह्म और जीव दोनों यद्यपि अजन्मा हैं तो भी ब्रह्म ईश अर्थात् नियामक है और जीव अनीश है अर्थात् नियाम्य है।' (श्वे०१।९) 'मायाधीश भगवान् इससे इस विश्वकी सृष्टि करते हैं और अन्य अर्थात् जीव मायासे निरुद्ध रहता है (श्वे०४।९) 'एक ही वृक्षपर निमग्न पुरुष अनीश्वर (असमर्थ) होने से मोहको प्राप्त होकर शोक करता है। जब प्रसन्न हुए अन्य ईश्वर को और उसकी महिमाको देखता है तो गतशोक हो जाता है' (श्वे०४।७) इत्यादि श्रुतियों

से 'और परमात्मा जीवसे अधिक है भेद निर्दिष्ट होनेसे' (ब्रह्म.सू. २।१।२२) 'इतर नहीं उपपत्ति न होनेसे' (ब्रह्म-सूत्र २।१।१७) इत्यादि सूत्रोंसे ब्रह्म और जीव दोनों के भेद के अवगत होनेसे उपासक ब्रह्म की उपासना स्वान्यरूपसे करे। शास्त्र ब्रह्मको जैसा बतलावे उसी रूपसे ब्रह्मकी उपासना करनी चाहिये अन्यप्रकारसे नहीं। अन्यथा करनेसे भगवान्के वचन का विरोध होता है। भगवान् ने गीतामें कहा है कि- जो पुरुष शास्त्रविधिको छोड़ कर स्वेच्छानुसार कार्यकरता है वह सिद्धि सुख और परगतिको नहीं प्राप्त होता है। अतः उपासकको स्वान्यरूप से ब्रह्मकी उपासना करनी चाहिये। इस प्रकारसे पूर्वपक्ष प्राप्त होने पर सिद्धान्त पक्षरूपसे कहते हैं कि- 'आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च।'

इस सूत्रमें 'तु' शब्द अवधारण अर्थमें है। उपासक स्वात्मरूपसे ही ब्रह्म की उपासना करे। उपासक जैसे स्वशरीरका आत्मा है उसी प्रकार ब्रह्म उपासक का भी आत्मा है। अतः 'ब्रह्म मेरा आत्मा है' इस प्रकार से उपासकको ब्रह्मकी उपासना करनी चाहिए।

शङ्का- उपासक ब्रह्मकी स्वात्मरूपसे उपासना क्यों करे?

उत्तर- ब्रह्म यद्यपि स्वरूप और स्वभावसे उपासकसे भिन्न है, तो भी 'त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते अहं वै त्वमसि' (हे भगवान् तू 'मैं हूँ और मैं तू है।) इस श्रुतिके प्रमाणसे पूर्वकालीन उपासक लोग मैं ब्रह्म, हूँ' अर्थात् 'मेरा आत्मा ब्रह्म है' इस रूपसे ही ब्रह्मकी उपासना को स्वीकार करते हैं।

शंका—पूर्वकालीन उपासक लोग उक्त रूप से क्यों मानते हैं ?

उत्तर—श्रुतियाँ ब्रह्मोपासना को उक्तरूपसे ही उपासकोंको बतलाती हैं।

'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' (छा० ६।८।४) (यह सर्व एतदात्मक (ब्रह्मात्मक) है।) 'य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः।, (बृ० ३।७।२२) श्रुति का यह पाठ माध्यन्दिनशाखा का है। इसका अर्थ है कि—जो आत्मा में (जीव में) रहता हुआ आत्मा के अन्तः में स्थित है। जिसे आत्मा नहीं जानता है। जो अन्तःस्थित होकर आत्मा का नियमन करता है। वह अन्तर्यामी अमृत परमात्मा (ब्रह्म) तुम्हारा आत्मा है। इत्यादि श्रुतियाँ समस्त चिदचिदात्मक जगत् को ब्रह्मशरीररूपसे और ब्रह्मको जगत्के आत्मारूपसे प्रतिपादन करती हैं। जैसे प्रत्यगात्मा (जीव) अपने देव मनुष्य इत्यादि शरीर का आत्मा है इस लिए अनुसन्धान करता है कि—'मैं देव हूँ' तथा 'मैं मनुष्य हूँ' वैसे ही परमात्मा (ब्रह्म) भी प्रत्यगात्मा (जीव) का आत्मा है इसलिए 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकारसे ही ब्रह्मका अनुसन्धान होता है। यह श्रुतियाँ ही बताती हैं। यथा—'त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते अहं व त्वमसि' 'अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते अन्योसावन्योऽहमस्मीति न स वेद' (बृ० १।४।१०) (और जो देवताको (ब्रह्म को) अपने आत्मासे भिन्न रूपसे अर्थात् ब्रह्मको अपना धारक तथा नियामकरूप आत्मा नहीं मानकर ब्रह्म की उपासना करता है और अपनेको ब्रह्मका धार्य तथा नियाम्यरूप

उपपत्तेश्च शब्दाच्च तद्द्वयमीश्वरे यतः ।

शरीर नहीं मानकर ब्रह्म की उपासना करता है कि 'ब्रह्म अन्य है और मैं अन्य हूँ' इस रूप से ब्रह्म की उपासना करता है अर्थात् ब्रह्म को अपना शरीरी (आत्मा) और अपने को ब्रह्मशरीर नहीं मानकर ब्रह्मोपासना करता है। वह नहीं जानता है अर्थात् वह अज्ञानी है।) 'सर्वं तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद' (बृ०५। ५।७) (सर्व उस पुरुष को परास्त कर देता है जो परमात्मा से अन्य में सर्व को स्थित मानता है।) इत्यादि श्रुतियों से "मैं ब्रह्म हूँ अर्थात् "मैं ब्रह्मात्मक हूँ" अर्थात् "ब्रह्म मेरा आत्मा है" इस प्रकार का अनुसन्धान ही उपासना में सिद्ध किया गया है। इस प्रकारसे यह अर्थ निकला कि—स्वात्माका स्वशरीरसे अधिक रूपसे अनुसन्धान करना चाहिये। उससे भी अधिक रूप से आत्मा के शरीरी (आत्मा) परमात्माका अनुसन्धान (भावना) करना चाहिए। इस लिये "पृथगात्मानं प्रेरितारञ्च मत्वा" (श्वे० १।६) (आत्मा और प्रेरणा करनेवाले अर्थात् स्वनियन्ता परमात्माको पृथक् रूपसे मानकर) इस श्रुति द्वारा कथित पार्थक्य (भेद) भी सिद्ध हो जाता है। अतः उपासकको अपने आत्मा रूपसे ही ब्रह्मकी उपासना करनी चाहिए।

(आनन्दभाष्य ४।१।३)

इस प्रकारसे ब्रह्मसूत्रकार भगवान् बादरायण श्रवणमननादिसे उत्पन्न हुई आत्मामात्रको अवलम्बन करनेवाली उक्त निश्चयात्मिका बुद्धिको ही मोक्षप्रद मानते हैं ॥५॥

"क्षरं प्रधानामृतमक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः" (क्षर

तामुभयपरामेव शाण्डिल्यो मन्यते ततः ॥६॥

प्रधान-(प्रकृति) तत्त्व है और उस प्रकृतिको भोग्यरूपसे हरण करनेवाला जीवात्मा ही अमृत अक्षर है, तथा उन प्रकृति और जीव दोनोंका नियमन करनेवाला एक देव परमात्मा है।) "तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमञ्च दैवतम्" (उस ईश्वरोंके भी पर महान् ईश्वरको तथा देवताओंसे भी पर उस देव को) "एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः' (इस परमात्मासे आकाश उत्पन्न हुआ) इत्यादि श्रुतियोंसे "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" (गीता०) हे अर्जुन! वह ईश्वर सर्वभूतोंके (सर्वप्राणियोंके) हृदयमें रहता है।) "अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।" (गीता) (हे गुडाकेश अर्जुन! सर्वप्राणियोंके हृदयमें स्थित मैं सर्वका आत्मा हूँ।) इत्यादि । स्मृतियोंसे सिद्ध होता है कि सर्वेश्वरत्व तथा जगत्कारणत्व इत्यादि ऐश्वर्य और सर्वात्मत्व ये दोनों ही परमेश्वर भगवान् श्रीराममें हैं। इसलिए उक्त उभयपरक अर्थात् ऐश्वर्यालम्बनकर्त्री तथा आत्मत्वावलम्बनकर्त्री उक्त निश्चयात्मक बुद्धिको ही मुक्तिदेनेवाली महर्षि शाण्डिल्य मानते हैं।

यहाँ पर उपपत्तिका अर्थ युक्ति अर्थात् तर्क भी है। अर्थात् परमात्माका ऐश्वर्य और आत्मत्व शब्द अर्थात् श्रुति स्मृतियोंसे सिद्ध है और तर्कसे भी सिद्ध है। वह तर्क इस प्रकार है कि—जिसमें ईश्वरत्व नहीं है वह आत्मा नहीं हो सकता है और जो आत्मा नहीं है वह ईश्वर भी नहीं हो सकता है। श्रुतियोंने ब्रह्मको सर्वका आत्मा कहा है अतः उसमें सर्वेश्वरत्व जगत्कारणत्वादि ऐश्वर्य भी हैं और सर्वका आत्मत्व भी है ॥६॥

ननूभयपरत्वं चासिद्धं बुद्धौ, कुतो यतः।
भक्ताराध्ये च भक्ते च वैषम्यं वर्त्तते महत् ॥७॥
मैवमालम्बते चेशमहं शब्दो यतः श्रुतौ।
देहवाचकशब्दा हि पर्यवस्यन्ति देहिनि ॥८॥

शंका—वादी शंका करता है कि—भगवान् उपास्य हैं और भक्त उनका उपासक है। अतः भगवान् और भक्त दोनोंमें महान् वैषम्य है। इस लिये मोक्षप्रदायनी उक्त बुद्धिका उभयावलम्बनत्व अर्थात् ऐश्वयविलम्बनत्व तथा आत्मत्वावलम्बनत्व सिद्ध नहीं हो सकता है। तात्पर्य यह है कि उपास्य भगवान् उपासक से भिन्न हैं, इसलिये उपासक उन भगवान् की अहंरूपसे अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि' रूपसे कैसे उपासना करे ? ॥७॥

समाधान—उक्त शंकाका समाधान किया जाता है कि—वादी उक्तरूपसे नहीं कह सकता है, क्योंकि 'त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते' इत्यादि श्रुतियोंमें 'अहम्' शब्द ईश्वरका ही अवलम्बन करता है। क्योंकि देहवाचक शब्दोंका देहीमें पर्यवसान होता है। आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने भी कहा है कि—

शरीराभिधायिपदानां शरीरिणि शक्तिः

(आनन्दभाष्य १।१।१)

अर्थ—शरीरवाचकपदोंकी शरीरी (आत्मा) में शक्ति (सम्बन्ध) होती है। 'त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते' इस श्रुतिमें अहंशब्द जीवात्माका वाचक है। 'यस्यात्मा शरीरम्' इस श्रुतिमें कहा गया है कि जीवात्मा ईश्वरका शरीर है 'शरीरवाचक शब्दका शरीरी अर्थ

होता है' यह ऊपर कहा जा चुका है। इसलिये यहां पर अहंशब्दका अर्थ हुआ मच्छरीरी (मदात्मा-मेरा आत्मा)। इसलिये यहाँ पर उक्त श्रुतिका अर्थ हुआ कि 'हे भगवान् मेरे आत्मा तुम हो' इसलिये कोई आपत्ति नहीं है।

शरीरवाचकशब्दका शरीरी (आत्मा) में पर्यवसान

शरीरवाचक शब्दका शरीरीमें पर्यवसान होता है अर्थात् शरीर-वाचकशब्दका अर्थ होता है शरीरी- आत्मा। वह इसप्रकार-

श्रुतिमें कहा है कि-'ब्राह्मणो यजेत' (ब्राह्मण यज्ञ करे) इस श्रुतिमें ब्राह्मणंको यज्ञका कर्त्ता कहा गया है। ब्राह्मणशब्द तो देहवाचक है। देह तो मरने पर नष्ट हो जाता है। नियम है कि 'क्रिया का फल कर्त्ताको मिलता है।' यज्ञकर्त्ता ब्राह्मणशरीर जब नष्ट हो चुका तो यज्ञका स्वर्गरूप फल किसको मिलेगा? इसलिये 'ब्राह्मणो यजेत' इस श्रुतिमें रहे हुऐ ब्राह्मणशब्दका अर्थ है- ब्राह्मणशरीरवाला आत्मा। ऐसा माननेपर कोई आपत्ति नहीं होती है। क्योंकि ब्राह्मण-शरीरका आत्मा (जीव) तो नित्य है। इसलिये यज्ञ करनेवाले उस ब्राह्मणशरीरके आत्मा को मृत्युके पश्चात् यज्ञफलस्वरूप स्वर्गमिलता है। इसलिये सिद्धान्त ठीक ही है कि- शरीरवाचकपदका शरीरी (आत्मा) अर्थ होता है।

अतः भगवान् और भक्तके स्वरूपसे भिन्न होने पर भी 'अहं ब्रह्मास्मि' इसप्रकारकी अहंग्रहोपासनामें कोई बाधा नहीं है ॥८॥

परेशेऽहंग्रहो सिद्धस्त्वन्तर्यामितया ननु ।
ततश्च देहसम्बन्धात् क्लेशः स्यादीश्वरेऽपि हि ॥९॥
नैवं शरीरसम्बन्धादनन्तरं द्वयोर्यतः ।
'अनश्नन्नि' तिरूपेण प्रोक्ता चेशे विशेषता ॥१०॥

देहसम्बन्धसे भी ईश्वरको क्लेश नहीं होता है ।

शंका– वादी फिर शंका करता है कि अन्तर्यामीरूपसे ही परमात्मामें 'अहं ब्रह्मास्मि' इसप्रकारका अहंग्रह सिद्ध होता है। ब्रह्मको अन्तर्यामी माननेपर शरीरान्तर्यामी जीवके सदृश ही ब्रह्मका भी शरीरसे सम्बन्ध मानना पड़ेगा। तब जैसे शरीरका सम्बन्धी होनेसे जीवको क्लेशभागी (दुःखी) माना जाता है उसीप्रकार ब्रह्मको भी शरीरका सम्बन्धी होनेसे क्लेशवाला अर्थात् दुःखी मानना पड़ेगा, अर्थात् शरीरसम्बन्ध होनेसे ईश्वरमें भी क्लेशादि दोष मानने पडेंगे ॥९॥

समाधान– उक्त शंकाका समाधान किया जाता है कि वादी ऐसा नहीं कह सकता है क्योंकि "द्वासुर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति" (सुन्दरपंख वाले और साथही रहनेवाले दो सखा (मित्र) एक ही वृक्षका अवलम्बन करते हैं। उन दोनोंमें से एक अर्थात् जीव कर्मफलरूप पिप्पलको स्वादपूर्वक खाता है और दूसरा अर्थात् परमात्मा कर्मफलको नहीं खाता हुआ अर्थात् नहीं भोगता हुआ प्रकाश करता रहता है।) इस श्रुति द्वारा जीवात्मा और परमात्मा दोनों का शरीरसम्बन्ध होनेके अनन्तर 'अनश्नन्' (कर्मफल नहीं भोगता हुआ) इस रूपसे परमेश्वरमें कर्मफलभोक्ता क्लेशभागी जीवसे

कर्माधीनस्य देहस्य सम्बन्धः क्लेशकारणम् ।
ईश्वरे तदभावाच्च कुतः क्लेशस्य सम्भवः ॥११॥
मायातीते न सन्तीशे क्लेशादयश्च मायिकाः ।
चेत् तदा तत्र मैश्वर्यं वर्त्ततां चापि मायिकम् ॥१२॥
मैवं वाच्यं कुतो यस्मादैश्वर्यमीश्वरस्य हि ।
'परास्य शक्ति'रित्यादिश्रुतौ स्वाभाविकं श्रुतम् ॥१३॥

विशेषता कही गई है। अतः ईश्वरमें क्लेशादि दोष नहीं होते हैं ॥१०॥

'ईश्वर क्लेशभाजन नहीं है' इस बातको अधिक स्पष्ट किया जाता है कि-कर्माधीन देहका सम्बन्ध ही क्लेशका कारण होता है। ईश्वर में तो कर्माधीन देहका सम्बन्ध नहीं है। अतः ईश्वरमें क्लेशका सम्बन्ध कैसे हो सकता है? ॥११॥

ईश्वरका ऐश्वर्य स्वाभाविक है।

'ईश्वरमें मायिक क्लेश नहीं होते हैं, इस प्रकार जो ऊपर कहा गया उसमें वादी शंका करता है कि—यदि ईश्वरमें मायाकृत क्लेशादि नहीं हैं तो उस (ईश्वर) में मायाकृत सर्वेश्वरत्व आदि ऐश्वर्य भी न होने चाहिए ॥१२॥

उक्त शंकाके समाधानरूपसे कहा जाता है कि— वादी उक्त प्रकारसे नहीं कह सकता है क्योंकि परमात्माके ऐश्वर्य मायिक नहीं हैं किन्तु "परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।" (इस ईश्वरकी सर्वोत्कृष्ट स्वाभाविकी शक्ति विविधप्रकारकी सुनी जाती है। इस ईश्वर के ज्ञान बल तथा क्रिया भी स्वाभाविक ही हैं।) इत्यादि श्रुतियोंके कथनानुसार स्वाभाविक ही हैं ॥१३॥

औपाधिका यथा जीवे क्लेशादयो मता ननु ।
ऐश्वर्यमीश्वरस्यापि नेति नेति निषेधतः ॥१४॥
तथौपाधिकमेव स्यादिति चेन्न कुतो यतः ।
अप्रतिषिद्धमैश्वर्यमीश्वरस्य श्रुतौ खलु ॥१५॥
निषेधानन्तरं यस्माद् दृष्टं तदवबोधनम् ।
नेति नेति निषिद्धैवमियत्ता चैश्वरी यतः ॥१६॥
ऐश्वर्यं ननु रामस्य ब्रह्मणः स्वीकृतं मया ।

वादी पुनः शंका करता है कि- जैसे जीवके क्लेशादि औपाधिक हैं वैसे ही ईश्वरका ऐश्वर्य भी औपाधिक ही होना चाहिए क्योंकि "अथात आदेशो नेति नेति" (अब यहांसे उपदेश नहीं है नहीं है।) इस प्रकारसे ईश्वरके ऐश्वर्यका निषेध किया गया है। ? इस शंकाका समाधान किया जाता है कि-वादी उक्त प्रकार से नहीं कह सकता है। क्योंकि उक्त श्रुतिमें इश्वरके ऐश्वर्यका निषेध नहीं किया गया है। क्योंकि 'नेति नेति' इस प्रकारके निषेधके अनन्तर "अथ नामधेयं सत्यस्य सत्यं प्राणा वै सत्यं तेषामेषां सत्यम्" (अब ब्रह्मका नाम सत्यका सत्य प्राण सत्यहैं उनका यह (ब्रह्म) सत्य है।) इस प्रकारसे ईश्वरके ऐश्वर्यको बतलाया है। 'नेति नेति' इस प्रकारसे ईश्वरकी इयत्ताका ही निषेध किया गया है ॥१४॥१५॥१६॥

वादी कहता है कि आपका कथन उचित है। मैं ईश्वरके ऐश्वर्यको स्वीकार करता हूँ। परन्तु वह ईश्वरका ऐश्वर्य नित्य नहीं है किन्तु अनित्य है। वह इस प्रकार—

सर्वजीवविमुक्तौ तु नावशिष्येत तत् परम् ॥१७॥
तदानीमीशितव्यानां पदार्थानामभावतः ।
ईशितव्यपदार्थं तु सदैश्वर्यमपेक्षते ॥१८॥
कर्माधीना जगत्सृष्टिः सर्वमुक्तौ न कर्म हि ।
ईशैश्वर्यमनित्यं तन्मन्यत इति चेन्न यत् ॥१९॥

ऐश्वर्य सदा ईशितव्य (नियाम्य) पदार्थकी अपेक्षा रखता है । अतः सर्वजीवोंकी मुक्ति हो जाने पर इश्वरका वह ऐश्वर्य शेष न रहेगा । अर्थात् नष्ट हो जायगा, क्योंकि ईश्वरका नियाम्य जगत् चेतनाचेतनोभयात्मक है । सभी चेतनोंके मुक्त हो जाने पर अर्थात् ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाने पर उन चेतनोंकी अपेक्षा करनेवाला ईश्वरका ऐश्वर्य समाप्त हो जायगा । चेतनोंके न रहने पर अर्थात् मुक्त हो जाने पर चेतनोंके प्रारब्धरूप कर्म भी न रहेंगे । चेतनोंके प्रारब्धरूप कर्मोंके न रहने पर प्रारब्धानुसार ईश्वर द्वारा सृष्ट (बनाये हुए) भोक्तव्य पृथिव्यादि अचेतन पदार्थ भी न रहेंगे । अतः ईश्वरका नियामकत्वरूप ऐश्वर्य अनित्य है ।

वादीके उक्तकथनके समाधानरूपमें कहा जाता है कि—वादीका उक्त कथन उचित नहीं है । इसका कारण यह है कि—चेतनाचेतनमिश्र यह जगत् बीजांकुर न्यायसे प्रवाहसे नित्य ही है । अर्थात् जैसे यह नहीं कहा जा सकता है कि पहले वृक्ष है कि बीज, यदि बीज न होगा तो वृक्ष कहांसे होगा ? तथा यदि वृक्ष न होगा तो बीज कहांसे होगा ? इसलिये बीज और अंकुर दोनों का प्रवाह अनादि और अनन्त माना जाता है । उसी प्रकार यदि जीव न होंगे तो उनके प्रारब्धकर्म न

अनादिश्च ह्यनन्तश्च भव एषः प्रवाहतः।
ततः सर्वविमुक्तेश्च सम्भवो न हि विद्यते ॥२०॥
ईशैश्वर्यस्य तस्माद्धि विनाशो न भवेदपि।

होंगे और प्रारब्धकर्मोंके न होने पर प्रारब्धकर्मानुसार जगत्की सृष्टि न होगी। तथैव जगत्के न होने पर जीवोंके शरीरादि भी न होंगे, शरीरादिकों न होने पर जीवोंके कर्म न होनेसे जीवोंके प्रारब्धरूपकर्म न होंगे। प्रारब्धरूपकर्मोंके अभावमें जगत्की सृष्टि न होगी। इस लिये बीजांकुर न्यायसे चिदचिन्मिश्र जगत् के प्रवाहको नित्य अर्थात् अनादि और अनन्त माना जाता है। यह नहीं कहा जा सकता कि जगत् कब नया उत्पन्न हुआ और कब एक दम नष्ट हो जायगा। इसलिये बीजांकुर न्यायसे जगत् भी प्रवाहसे सर्वदा रहता ही है। अतः उस जगत्का नियामकत्वरूप ईश्वरका ऐश्वर्य भी सदा रहता ही है। इस लिये वादी द्वारा की हुई ईश्वरके ऐश्वर्यके अनित्य होनेकी शंकाका कोई अवसर ही नहीं है। क्योंकि बीजांकुरन्यायसे प्रवाहसे जगत् नित्य ही है अतः तत्प्रयुक्त ईश्वरका ऐश्वर्य भी नित्य ही है, अनित्य नहीं है।

दूसरी बात यह है कि—जीव अनन्त हैं अर्थात् असंख्य हैं। अतः सभी जीवोंकी मुक्तिकी सम्भावना ही नहीं है। इसलिये मुक्त नहीं हुए जीवोंका नियामकत्वरूप ईश्वरका ऐश्वर्य नित्य ही है अनित्य नहीं है। इस लिये ईश्वरके ऐश्वर्यके अनित्यत्वको प्रतिपादन करनेवाली वादीकी शंका को भी किसी प्रकारसे अवसर नहीं प्राप्त हो सकता है ॥१७॥१८॥१९॥२०॥

उक्त प्रकार के कथनसे अर्थात् बीजांकुरन्यायेन जगत्के प्रवाहसे

नित्यमेव ततश्चैशमैश्वर्यं खलु नान्यथा ॥२१॥
ज्ञानं सङ्कुचितं चेह जीवस्य कर्मणा खलु ।
मुक्तौ तु कर्मणोऽपाये प्राप्नुयात् तदनन्तताम् ॥२२॥

नित्य होनेसे और सर्वजीवांकी मुक्तिके सम्भवित न होनेसे चिदचिन्मिश्र जगत्की अपेक्षा करनेवाले तथा जीवोंकी अपेक्षाकरनेवाले ईश्वरके नियामकत्वरूप ऐश्वर्यका विनाश भी नहीं होता है। अतः ईश्वरका ऐश्वर्य नित्य ही है, अनित्य नहीं ॥२१॥

तुष्यतु दुर्जनन्यायसे सर्वजीवोंकी मुक्तिके मानने पर भी ईश्वरके ऐश्वर्यका अनित्यत्व नहीं सिद्ध हो सकता है। यदि कहो कि कैसे ? तो इसके उत्तरमें कहा जाता है कि—

जीवका ज्ञान विभु (व्यापक) पदार्थ है। वह प्रारब्धकर्मानुसार मनुष्यादि शरीर प्राप्त होने पर दीपकी प्रभाके समान संकुचित हो जाता है। भगवान्की अनन्यभक्ति करनेसे जीवके मुक्त होने पर कर्मके नष्ट होने पर वह ज्ञान फिर अनन्तताको अर्थात् विभुत्वको प्राप्त होता है। तब मुक्त जीव परमात्माकी परमसमताको प्राप्त होता है। उस मुक्त जीवकी अपेक्षासे ईश्वरका ऐश्वर्य नित्य ही है अनित्य नहीं।

तात्पर्य यह है कि—यदि जीवकी ब्रह्मभावापत्तिको (ब्रह्मत्वप्राप्त होनेको) मुक्ति माना जाय तो मुक्तिके अनन्तर जीवके ब्रह्म हो जानेसे अर्थात् जीवके न रहनेसे जीवकी अपेक्षाकरनेवाला ईश्वरका नियामकत्व-रूप ऐश्वर्य नाशको प्राप्त होता है। परन्तु जीवकी ब्रह्मभावापत्ति मुक्ति नहीं है, क्योंकि "निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति।" (मुण्डकोपनिषत्) इस श्रुतिके कथनानुसार जीव मुक्तिमें ब्रह्मत्वको नहीं प्राप्त होता है किन्तु

उपैति परमं साम्यं तेन मुक्तः परात्मनः।
ईशैश्वर्यं हि तन्नित्यं तं मुक्तं प्रति चास्ति यत् ॥२३॥
जगद्धेतुत्वरूपं नन्वैश्वर्यमीश्वरे न हि।
सत्त्वे विकारिता नूनं तत्र स्यादिति निश्चयः ॥२४॥

ईश्वरकी परमसमताको प्राप्त होता है। साम्य अर्थात् सादृश्य तो भेदगर्भित होता है। 'तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयोधर्मवत्त्वं सादृश्यम्' जो पदार्थ तद्भिन्न हो और तद्गत अधिक धर्मवाला हो वह तत्सदृश कहा जाता है। जैसे 'चन्द्रसदृशं मुखम्' (मुख चन्द्रसदृश है) यहाँ पर चन्द्रसे भिन्न है और चन्द्रगत आह्लादकत्वधर्मवाला है इसलिये मुख चन्द्रसदृश कहा जाता है। उसी प्रकार मुक्तिमें ब्रह्मकी परम समताको जीव प्राप्त होता है अर्थात् मुक्तिमें जीव ब्रह्मसे भिन्न रहता है और ईश्वरका ज्ञानविभुत्वरूप धर्म जीवमें रहता है।

उक्त कथनसे सिद्ध हुआ कि मुक्ति अवस्थामें भी जीव ईश्वरसे भिन्न ही रहता है। इसलिये मुक्तजीवका नियामकत्वरूप ईश्वरका ऐश्वर्य जीवके मुक्त होने पर भी रहता ही है, नष्ट नहीं होता है। अतः जीवोंके असंख्य होनेसे यद्यपि सर्वजीवोंकी मुक्ति असम्भवित है तो भी तुष्यतु दुर्जनन्यायसे सर्वजीवोंकी मुक्ति मानने पर भी भी ईश्वरका ऐवर्श्य नित्य ही सिद्ध होता है अनित्य नहीं। इसलिये वादीकी उक्त प्रकारकी शंकाको किसी भी प्रकार अवसर नहीं प्राप्त होता है ॥२२॥२३॥

वादी फिर शंका करता है कि–आप के श्रीरामानन्दसिद्धान्तमें ईश्वरको जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण माना जाता है,

उपादानं घटादेर्हि विकृतं मृत्तिकादिकम् ।
सक्रियत्वात् कुलालादि निमित्तं च विकारवत् ।।२५।।
जगतश्चेश्वरस्तस्मात् कारणमुभयं न हि ।

किन्तु ईश्वरमें जगत्कारणत्वरूप ऐश्वर्य नहीं है । यदि ईश्वरको जगत्का कारण माना जायगा तो निश्चित ही ईश्वरको विकारी मानना पड़ेगा । क्योंकि मृत्तिकादि पदार्थ स्वयं विकृत होकर ही अर्थात् विकारको प्राप्त हो कर ही घटादि कार्योंके उपादानकारण बनते हैं। इसी प्रकार ईश्वर यदि जगत्का उपादानकारण है तो निश्चितरूपसे कहना ही पड़ेगा कि वह (ईश्वर) विकारवाला होकर ही जगत् का उपादानकारण बना है ।

उक्त प्रकार से ही यदि ईश्वर को जगत्का निमित्तकारण माना जायगा तो उसे विकारी अवश्य मानना पड़ेगा । क्योंकि घटादि कार्योंके निमित्तकारणरूप कुलाल (कुम्भकार) आदि चक्रभ्रमणादि व्यापारको करके ही घटादि कार्योंके निमित्तकारण बनते हैं । अतः जगत्का निमित्तकारण मानने पर ईश्वरमें भी सक्रियत्वरूप विकार मानना ही पड़ेगा ।

अतः ईश्वरमें जगत्कारणत्वरूप ऐश्वर्य नहीं है क्योंकि ईश्वर उक्तरूपसे जगत्का न उपादान कारण है और न निमित्त कारण ही है ।

वादी की उक्त शंकाका समाधान किया जाता है कि—वादी उक्त रूपसे नहीं कह सकता है क्योंकि परमेश्वर प्रकृतिका आत्मा है । इसलिए प्रकृति परमेश्वर का शरीर है 'यस्य पृथिवी शरीरम्, 'यस्यापः

इति चेन्न, कुतो यस्मात् प्रकृत्यात्मा परेश्वरः ॥२६॥
सद्वारकमुपादानं जगतः स च सम्मतः ।
विकारो देहभूतायां प्रकृतौ तन्न दूषणम् ॥२७॥

शरीरम्' 'यस्याग्निः शरीरम्, 'यस्याकाशः शरीरम्, 'यस्य वायुः शरीरम्, इत्यादि वृहदारण्यकोपनिषत्की अनेकों श्रुतियोंमे प्रकृतिको ईश्वरका शरीर कहा गया है। श्रीमद् वाल्मीकिरामायण में श्रीब्रह्माजी ने परब्रह्म भगवान् श्रीराम जी से कहा है कि 'जगत् सर्व शरीरं ते, (हे भगवान् श्रीराम ! समस्त जगत् आपका शरीर है।) विष्णुपुराणमें भी उक्त प्रकार से ही कहा गया है। ॥२४॥२५॥२६॥

ऊपर कही हुइ श्रुतियों तथा स्मृतियोंके बचनानुसार प्रकृति और परमात्माका शरीरशरीरिभाव निश्चत है। इस लिए वादी द्वारा कहा हुआ दोष हमारे मत में नहीं हो सकता है। क्योंकि हमारे विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तमें परमात्माको जगत्का सद्वारक उपादान कारण माना गया है। अर्थात् ईश्वर शरीरद्वारा जगतका उपादान कारण है। इसलिए विकार ईश्वर के देहरूप प्रकृतिमें ही माना जाता है। प्रकृतिके आत्मारूप ईश्वरमें विकाररूप दोष नहीं माना जाता है। इस प्रकार विकारको प्राप्त होने वाली प्रकृति ही जगत्का उपादानकारण है तो भी 'परमात्मा प्रकृतिका आत्मा है, अतः प्रधान है। इसलिए जगत्का मुख्य उपादान कारण ब्रह्म ही (परमात्मा ही) माना जाता है ।

श्रीसम्प्रदाय के प्रधानाचार्य आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यने भी कहा है कि—

एवमाम्नायते—'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति । तत्तेजोऽसृजत । तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति । तदपोऽसृजत' (छां०६।२।३) इति सृष्टिवाक्ये जगत्कर्तृकृतस्येक्षणस्य श्रवणाच्चेतनात्मककर्तृकत्वमेवेक्षणस्यानुभविकत्वाच्चेतनरूपस्य ब्रह्मण एव जगतः कारणत्वं न त्वचेतनस्य प्रधानस्य स्वातन्त्र्येण ब्रह्मशरीरत्वेन तु तत्पारतन्त्र्ये जगत्कारणत्वमस्त्येव । अत एव 'तदधीनत्वादर्थवत्' (ब्र०सू०१।४।३) इति सूत्रेण 'अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्' (श्वे०४।९।) इति श्रुत्या च प्रधानस्य ब्रह्माधीनत्वेन चेतनव्यतिरिक्तस्य जगतः कारणत्वमभिहितम् । एवञ्चाचेतनस्य प्रधानस्याचेतनांशस्य जगतः कारणत्वोपपत्तावपि न सर्वस्य कारणत्वम् । ब्रह्मणस्तु स्वरूपेणैव तेजोबन्नादिसर्वलोकस्य कारणत्वम् । सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टत्वात् । तथा च 'अस्मान्मायी सृजते विश्मेवतत्' (श्वे०४।९) इति श्रुत्यनुरोधेन सद्ब्रह्मात्मादिशब्दवाच्यं ब्रह्मैव प्रधानद्वारा तेजोबन्नादिरूपसर्वलोकमुत्पादयति । तत्राप्याद्यादिसृष्टावान्तरसृष्टौ च स्वस्मिन् सूक्ष्मरूपेणाव्याकृतनामरूपाभ्यां स्थितानां सर्वेषां व्याकृतनामरूपात्मिकां सृष्टिं करोति । 'तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियते' (बृ०१।४।७) इति श्रुतेः तदेवमचेतनमात्रस्य प्रधानांशत्वेन विकारित्वादिदोषाणां प्रधान एव पर्यवसानाद् ब्रह्मणो निर्विकारत्वमेव स्वतः सिद्धम् । एवञ्च निर्विकारिणस्तस्य मृदादिस्वरूपस्य घटादिरूपत्वप्राप्तिवत् स्वरूपेणाचेतनविकारिजगद्रूपता न सम्भवतीति स्वरूपतो जगदुपादानत्वासिद्ध्या प्रधानजीवद्वारैव तस्य जगदुपादानत्वम् । तथा च जगतो ब्रह्मोपादानकारणकत्वस्वीकारेऽपि नाद्वैतवादः

सिध्यति । तथा सति ब्रह्मकारणवादिमायाकारणवादिवाक्यानामेकवाक्यतासम्पादनेऽपि न कश्चिद् विरोधः ।

(आनन्दभाष्य १।१।५)

श्रीआनन्दभाष्य के अनुवादरूप **'श्रीवैष्णवालङ्कारभाष्य'** में मैं ने भी कहा है कि—

श्रुतिमें इस प्रकार कहा है कि 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' 'तदैक्षत बहु स्याम्'। इस सृष्टिवाक्यमें 'जगत्के कर्त्ताने संकल्प किया' यह श्रुत है। संकल्प करना चेतनका ही धर्म है। अतः चेतनरूप ब्रह्म ही जगत्कारण है। अचेतन प्रधान स्वतंत्ररूपसे जगत्कारण नहीं है। ब्रह्मका शरीर होनेसे ब्रह्मपरतन्त्ररूपसे तो प्रधान की जगत्कारणता है ही। अत एव 'तदधीनत्वादर्थवत्' (ब्र०सू०१।४।३) इस सूत्रसे और 'अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्' इस श्रुतिसे प्रधानकी ब्रह्माधीन होकर चेतनसे भिन्न जगत्कारणता कही गयी है। फलित यह हुआ कि अचेतन प्रधान अंशतः अचेतनरूप जगत्का कारण होने पर भी सर्व जगत्का कारण नहीं हैं। ब्रह्म तो स्वरूपसे ही तेज जल और पृथिवी आदि सर्व जगत्का कारण है। क्योंकि वह सूक्ष्म चित् और अचित् तत्वोंसे विशिष्ट है। इस प्रकार 'अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्' (मायावाला ब्रह्म इस मायासे इस विश्वकी सृष्टि करता है।) इस श्रुति के कथनानुसार सत् ब्रह्म और आत्मा इत्यादि शब्द वाच्य ब्रह्म ही प्रधानद्वारा तेज जल और पृथिवी आदि सर्वलोकका उत्पादन करता है। इस उत्पत्तिमें भी आदि सृष्टि और अवान्तर सृष्टिमें अपने स्वरूपमें सूक्ष्मरूपसे (अव्याकृत (अविभक्त)

नामरूपसे स्थित समस्त पदार्थोंको व्याकृत (विभक्त) नामरूपवाले करते हुए सृष्टि करता हैं। इसमें श्रुति प्रमाण है कि-'तद्धेदं तर्ह्यव्याकृ-मासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियते (बृ० १।४।७) (सृष्टिके पूर्वकालमें यह समस्त विश्व अव्याकृतनामरूपसे था इसीको नामरूपके पृथक्-करण व्यापारसे व्याकृत किया। इस प्रकार अचेतन मात्रके प्रधानका अंश होने से विकारित्व आदि दोष प्रधानमें ही रह जानेसे ब्रह्म सदा निर्विकार ही रहता है। इस प्रकार निर्विकार ब्रह्मकी मृत्तिका जिसप्रकार घटादिरूपको स्वतः धारण करती है उसी रीतिसे स्वरू-पसे अचेतन और विकार युक्त जगद्रूपता सम्भवित नहीं होती। इसिलिए स्वरूपेण जगत्के उपादानकारणत्वकी असिद्धि है अतः प्रधान और जीव के द्वारा ब्रह्म जगदुपादानकारण सिद्ध होता है। इस प्रकार यह जगत् ब्रह्मोपादानकारणवाला होता है। इसलिये अद्वैत-वादकी सिद्धि नहीं होती। ऐसा होनेसे ब्रह्मकारणवादी और माया-कारणवादी वाक्योंको एकवाक्यता कर देने पर भी कोई विरोध नहीं है।

(श्रीवैष्णवालङ्कारभाष्य १।१।५)

आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजीका उक्त कथन श्रीसम्प्रदायकेपूर्वाचार्योंके कथनानुसार ही है। यहाँ पर कुछ साम्प्र-दायिक पूर्वाचार्य-वचन उद्धृत किये जाते हैं—

जगद्गुरु श्रीद्वारानन्दाचार्य जी ने कहा है कि—

'विश्वोपादानता यस्य चिदचिद्द्वारिका मता।
कार्याकार्यात्मकं देवं रामचन्द्रं नमामि तम् ॥

अर्थ–जिनकी विश्वोपादानता अर्थात् जगत्‌की उपादानकारणता (मूल- कारणता) चित् और अचित् शरीर द्वारा मानी गई है, कार्य तथा कारण स्वरूप उन भगवान् श्रीरामचन्द्र देवको मैं नमस्कार करताहूँ ॥

जगद्‌गुरु श्रीश्यामानन्दाचार्य जीके योग्य शिष्य जगद्‌गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्य जी ने स्वरचित 'श्रौतसिद्धान्तविन्दु' में कहा है कि–

"त्रिधाऽपि श्रुतौ सर्ववित् सर्वशक्ति–
र्जगत्कारणं जानकीनाथ एव।
ततः कापिलं गौतमीयञ्च शैवं
च शाक्तं तथान्यन्मतं नानवद्यम् ॥७॥'

अर्थः– वेदमें सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिशाली भगवान् श्रीजानकीनाथ जी ही तीनों प्रकारके जगत्कारण अर्थात् जगत्‌के उपादानकारण, निमित्तकारण तथा सहकारी कारण रूप तीनों कारण सुने गये हैं। अतः सांख्य, न्याय, शैव, शाक्त तथा अन्य मत अनवद्य अर्थात् निर्दोष नहीं हैं ॥७॥

"विकारञ्च रामो दयाब्धिस्तथात्वे
दयाशून्यतां पक्षपातञ्च नैति ।
प्रकारे विकारस्तथा चित्रशक्तौ
च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्यकर्म ॥८॥

अर्थ– जगत्‌के उपादान, निमित्त तथा सहकारी तीनों कारण होने पर भी दयासिन्धु भगवान् श्रीराम जी विकार, निर्दयता और पक्षपात को नहीं प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि जैसे घटके उपा-

दानकारण मृत्तिकामें विकार होता है उसी प्रकार यदि जगत्के उपादान-कारण भगवान् श्रीराम जी हैं तो उनमें भी विकार अवश्य होना चाहिये। परन्तु जगत्के उपादान कारण होने पर भी भगवान् श्रीराम जी में विकार नहीं होता है। इसका कारण यह है कि श्रीराम जी जगत् के सद्वारक उपादान कारण हैं। अर्थात् भगवान् श्रीराम जी चित् (चेतन जीव) और अचित् (अचेतन प्रकृति) स्वशरीर रूप प्रकार (विशेषण) द्वारा ही जगत्के उपादान कारण हैं। इसलिये श्रीराम जी में विकार नहीं होता है किन्तु उनके शरीररूप चित् और अचित् में ही विकार होता है। यह बात अच्छी प्रकार से ध्यानमें रखना चाहिए कि जीवात्मा निर्विकार तत्त्व है। अतः जीवके स्वरूपमें किसी प्रकारका विकार नहीं होता है किन्तु उसके स्वभावरूप ज्ञानमें ही विकार होता है। प्रकृतिके तो स्वरूप और स्वभाव दोनोंमें विकार होता है।

इसीप्रकार 'भगवान् श्रीराम जी जगत्के निमित्तकारण हैं। इसलिये दुःखमय जगत् बनानेसे भगवान् श्रीराम जी निर्दय सिद्ध होते हैं एवं किसीकी दुखीरूपसे किसीकी सुखी रूपसे सृष्टि करनेसे भगवान् श्रीराम जी पक्षपाती सिद्ध होते हैं।, किन्तु ऐसी बात नहीं है। जगत्के निमित्त-कारण होने पर भी भगवान् श्रीराम जी में निर्दयता और पक्षपात रूप दोष नहीं होते हैं। इसका कारण यह है कि दुःखमय तथा विचित्र अर्थात् विषम सृष्टि करनेमें प्राणियों के प्राचीन अर्थात् प्रार-ब्धकर्म ही मुख्य हेतु हैं। इसलिए भगवान् श्रीराम जी में किसी प्रकार दोष नहीं सिद्ध हो सकते हैं। श्रीराम जी तो प्राणियोंके

प्रारब्धकर्मानुसार ही जगत् की सृष्टि करते हैं। इसलिए श्रीराम जी सदैव सर्वथा दोषरहित ही रहते हैं ॥८॥

जगद्गुरु श्रीचिदानन्दाचार्य जी के शिष्यरत्न जगद्गुरु श्रीपूर्णानन्दाचार्य जी ने भी 'बोधनक्षत्रमाला' में कहा है कि—

'रामस्य परिणामो हि सद्वारको जगच्च सत् ।
इदं जगन्न मिथ्या तत् सत्ख्यातिर्बुधसम्मता ॥"

अर्थ— जगद्गुरु श्रीपूर्णानन्दाचार्य जी कहते हैं कि—जगत् भगवान् श्रीराम जी का सद्वारक अर्थात् चिदचिद्रूप शरीरद्वारा परिणाम है और सत् (सत्य) है। यह जगत् मिथ्या नहीं है अतः विद्वानोंने सत्ख्याति को ही स्वीकार किया है।

जगद्गुरु श्रीपूर्णानन्दाचार्य जीके शिष्यवर्य जगद्गुरु श्रीश्रियानन्दाचार्य जी ने स्वनिर्मित 'सिद्धान्तविजय' में कहा है कि—

"अक्षतं निर्विकारत्वं ब्रह्मणः श्रुतिसम्मतम् ।
सद्वारिका मता यस्माद् ब्रह्मणः परिणामिता ॥"

अर्थ— ब्रह्मका परिणाम (विकार) सद्वारक अर्थात् शरीरद्वारा माना गया है, इसलिये श्रुतिसम्मत अर्थात् श्रुतिद्वारा स्वीकृत ब्रह्मका निर्विकारत्व अक्षत है अर्थात् बाधारहित है।

इसलिये प्रकृतिका आत्मस्वरूप परमात्मा जगत् का सद्वारक अर्थात् प्रकृतिरूप स्वशरीरद्वारा उपादानकारण है। इसलिये विकार देहरूप प्रकृतिमें ही होता है। इसलिये कोई दोष नहीं है। अर्थात् परमात्मा दोषरहित है। अतः वादी की शंका निर्मूल है ॥२६॥२७॥

पच्चीसवें श्लोकमें कहा गया है कि—"सक्रियत्वात् कुलालादि

देहप्रयाससापेक्षा न मता तन्निमित्तता।
सङ्कल्पात्तु जगत् सृष्टं तेन, तस्मान्न दूषणम् ॥२८॥

निमित्तं च विकारवत्।" (घटके निमित्तकारण कुलालादि सक्रिय होने से विकार (आयासरूपविकार) वाले हैं।) अर्थात् वादीकी शंका इस प्रकारकीहै —

शंका—वादी शंका करता है कि जैसे घटके निमित्तकारण कुलालादि सक्रिय होनेसे आयासरूप विकारवाले हैं। उसी प्रकारसे परमेश्वरको जगत्का निमित्तकारण मानने पर उसमें (परमेश्वरमें) भी सक्रियत्व होनेसे आयासरूप विकार मानना पड़ेगा। इसलिये श्रुतिप्रतिपादित ईश्वरकी निर्विकारताकी हानि होगी। इसलिये ईश्वर जगत्का निमित्तकारण नहीं है।

समाधान—वादीकी उक्त शंकाके समाधानरूपसे कहा जाता है कि—ईश्वर का निमित्तकारणत्व सिद्धान्त में कुलालादिके सदृश देहसापेक्ष नहीं माना गया है। किन्तु 'तदैक्षत बहु स्याम्' (उसने संकल्प किया कि मैं बहुत हो जाऊँ।) इस श्रुतिकथनानुसार उस ईश्वरने तो जगत्को संकल्पमात्रसे सृजा है अर्थात् बनाया है। अर्थात् ईश्वरकृत जगत्की सृष्टि देहायास-साध्य नहीं किन्तु ईश्वरसंकल्पमात्रसाध्य है। इसलिये कोई दोष नहीं है। अर्थात् जगत्के स्रष्टा ईश्वरमें देहायासरूप विकार सिद्ध नहीं होता है। इसलिये ईश्वरमें विकारके सिद्ध न होनेसे उसकी निर्विकारता की क्षति नहीं होती है ॥२८॥

विशिष्टं चेदुपादानं प्रकारोऽपि भवेत्तथा।
उपादेयमुपादाननिष्ठं लोके हि विश्रुतम् ॥२९॥
विशेषणविशेष्येतिद्वयनिष्ठं जगत् ततः।
एकस्योभयनिष्ठत्वं कथङ्कारं भवेन्ननु ॥३०॥
मैवं प्रतिष्ठितं यस्मात् प्रकृतौ च जगत् खलु।
प्रकृतेश्च प्रतिष्ठा स्वदेहिनि परमात्मनि ॥३१॥
गृहस्थपीठनिष्ठस्य यथा हि गृहनिष्ठता।
तथा प्रकृतिनिष्ठस्य जगतो ब्रह्मनिष्ठता ॥३२॥

शंका—वादी फिर शंका करता है कि —आपके सिद्धान्तमें जगत्का उपादानकारण विशिष्ट ब्रह्म है तो विशिष्टका प्रकारांशरूप प्रकृति भी जगत्का उपादानकारण होगी। जगत्में प्रसिद्ध है कि उपादेय (कार्य) उपादानकारणनिष्ठ होता हैं। इसलिये आपको जगत्रूपकार्य विशेषण (प्रकृति) और विशेष्य (ईश्वर=ब्रह्म) उभयनिष्ठ मानना पड़ेगा। परन्तु यह असम्भवित है। एक पदार्थकी उभयनिष्ठता कैसे हो सकती है? ॥२९॥३०॥

समाधान—वादी की शंकाका समाधान यह है कि—वादी उक्त प्रकारसे नहीं कह सकता है। क्योंकि जगत्रूपकार्यका उपादाकारण प्रकृति है। इसलिये जगत् अपने उपादानकारण प्रकृतिमें प्रतिष्ठितहै। प्रकृतिका आत्मा परमात्मा है अतः प्रकृतिकी स्थिति प्रकृतिके आत्मरूप परमात्मामें है। अतः जैसे गृहमें स्थित पीठ पर स्थित पुरुष गृहनिष्ठ होता है, उसी प्रकार ब्रह्मनिष्ठ प्रकृतिमें स्थित जगत् भी ब्रह्मनिष्ठ ही है। इसलिये जगत् के ब्रह्म और प्रकृति उभयनिष्ठ होनेमें कोइ आपत्ति नहीं है।

तात्पर्य यह है कि-जगत्की उभयनिष्ठताकी असम्भवताका दोष सांख्यमतमें ही हो सकता है। क्योंकि सांख्यमतवाले ब्रह्माधिष्ठित प्रकृतिको जगत्का उपादानकारण नहीं मानते हैं किन्तु स्वतन्त्र प्रकृतिको ही जगत्का उपादानकारण मानते हैं। हम विशिष्टाद्वैतवेदान्ती तो प्रकृतिको ब्रह्मका (ईश्वरका) शरीर मानते हैं। अतः हम लोग ब्रह्माधिष्ठित प्रकृतिको ही जगत्का उपादानकारण मानते हैं। ब्रह्मानधिष्ठित स्वतन्त्र प्रकृतिको जगत्का उपादानकारण नहीं मानते हैं। इसलिये हमारे मतमें गृहस्थितपीठस्थित पुरुषकी गृहस्थितिके न्यायसे ब्रह्मशरीर होनेसे ब्रह्मनिष्ठ प्रकृतिनिष्ठ जगत्के ब्रह्मनिष्ठ होनेमें कोई आपत्ति नहीं है। इसलिये वादीकी शंकाको हमारे मतमें किसी भी प्रकारसे अवसर नहीं प्राप्त होता है। भगवान्‌ने भी गीतामें कहा है कि—

"मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्त्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥" गी. ९।४

आचार्यसम्राट् भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजीने भी इस श्लोकके आनन्दभाष्यमें कहा है कि—

"इदं चराचरं सर्वं जगत्। अव्यक्ताऽप्रकाशिता मूर्तिः स्वरूपं यस्य सोऽव्यक्तमूर्तिस्तेन मया धारकेण नियामकेन। शेषिरूपेणेति यावत्। ततं व्याप्तम्। अतः सर्वभूतानि मत्स्थानि मयि स्थितानि। अन्तर्यामिणो ममाधीनस्थितिनियमनानि सन्तीत्यर्थः। अहञ्च तेषु नावस्थितः। मम स्थितिस्तु न तेषामायत्तेत्यर्थः।"

(गीताका आनन्दभाष्य ९।४)

ईशः प्रकृतिदेहोऽथ नोपादानं भवेन्ननु ।
उपादेयं जगद् यस्माच्चेतनाचेतनात्मकम् ॥३३॥
वक्तुं न शक्यते चैवं कुतश्चेदुच्यते यतः ।
मिथश्चापेक्षणादत्र प्रकृतिश्चिदचिद्द्वयम् ॥३४॥

अर्थ—यह समस्त चराचर चगत् अव्यक्त मूर्ति अर्थात् अप्रकाशित स्वरूप मुझसे व्याप्त है । अर्थात् सर्वके धारक (आधार) नियामक तथा शेषी होनेसे सर्वके आत्मा मुझसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है । इसलिये सर्वभूत मुझमें स्थित हैं । अर्थात् सर्वभूतोंके स्थिति और नियमन मुझ सर्वान्तर्यामीके अधीन हैं । मैं उन सर्वभूतों में स्थित नहीं हूँ। अर्थात् मेरी स्थिति सर्वभूतोंके अधीन नही है ।

इसलिये जगत्को उभयनिष्ठ माननेमें अर्थात् ईश्वरशरीररूप प्रकृतिमें स्थित जगत्को प्रकृतिके आत्मरूप ईश्वरमें स्थित माननेमें कोई दोष नहीं है ॥३१॥३२॥

शंका— वादी पुनः शंका करता है कि— आप सिद्धान्ती प्रकृतिशरीरक ब्रह्मको जगत्का उपादानकारण मानते हैं; किन्तु यह ठीक नहीं है । इसका कारण यह है कि जगत्रूपकार्य चेतनाचेतनोभयात्मक है । इसलिये जगत्का उपादान कारण चेतनाचेतनोभयशरीरक होना चाहिये । आप तो चेतनाचेतनरूप जगत्का उपादान कारण प्रकृतिमात्रशरीरक ब्रह्मको मानते है । प्रकृति तो अचेतन है । अतः आप सिद्धान्तीका कथन उचित नहीं है ।

समाधान— उक्त शंकाके उत्तरमें कहा जाता है कि— आप वादी महाशय ऐसा नहीं कह सकते हैं । क्योंकि 'प्रकृतिशरीरक ब्रह्म' इसमें

परस्पर अपेक्षित होनेसे चेतन जीव और अचेतन प्रकृति दोनों ही प्रकृतिपदवाच्य हैं।

तात्पर्य यह है कि चेतनाचेतन उभय भोक्ता तथा भोग्यरुप हैं। अर्थात् चेतन भोक्ता है और अचेतन भोग्य पदार्थ है। दोनों परस्पर अपेक्षित पदार्थ हैं। भोक्ता बिना भोग्यकी सिद्धि नहीं हो सकती और भोग्य बिना भोक्ताकी सिद्धि नहीं हो सकती है। इसलिये चेतन और अचेतनरूप जीव और प्रकृति दोनो ही यहाँ पर प्रकृतिपदवाच्य हैं।

'इदं चेतनाचेतनात्मकं जगत् प्रक्रियत आभ्यामिति प्रकृती' इस प्रकार की व्युत्पत्तिसे भी प्रकृतिशब्द चेतन और अचेतन रूप जीव और प्रकृति दोनोका वाचक सिद्ध होता है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने भी अचेतन प्रकृति और चेतन जीव दोनोंको प्रकृतिशब्दसे कहा है—

"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥" (गीता ७।४)

गीताके आनन्द भाष्यमें भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जीने भी कहा है कि "प्रतिज्ञातमर्थमाह—भूमिरिति। भूम्यादिशब्दानां स्थूलसूक्ष्मभूत-परत्वम्। मनसोऽन्तर्बाह्यकरणपरत्वम्। बुद्धिशब्देन चाव्यक्तमहत्तत्त्वयोर्ग्रहणम्। अहंकारश्चेतीयं मे समाश्रया प्रकृतिरष्टधा भिन्ना मच्छरीरतयाऽवस्थितेयमेकैव प्रकृतिश्चतुर्विंशतितत्त्वात्मिका ह्यष्टभिर्भेदैरभिधीयते॥४॥"

(गीता का आनन्दभाष्य ७।४)

अर्थ—'भूमिरापो....' इसश्लोकसे प्रतिज्ञा किये हुए अर्थको कहते हैं।

भगवान् कहते हैं कि पृथवी जल तेज वायु आकाश मन बुद्धि और अहंकार यह आठ प्रकार की मेरी प्रकृति है। भूमि इत्यादि शब्द स्थूल सूक्ष्म भूतपरक हैं। स्थूलभूतका अर्थ है आकाशादि पञ्चमहाभूत और सूक्ष्म भूतका अर्थ है शब्दादि पञ्च तन्मात्रा। मन शब्दका अर्थ है मनरूप अन्तरिन्द्रिय और चक्षुरादि दश बहिरिन्द्रिय। बुद्धि शब्दसे अव्यक्त (मूलप्रकृति) और महत्तत्त्व का ग्रहण होता है। भगवान् कहते हैं कि मेरे शरीररूपसे स्थित चतुर्विंशति (चौबीस) तत्त्वात्मक एक ही प्रकृति आठ प्रकारसे कही जाती है

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं बिद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥"(गी७·१५)

इस श्लोकके आनन्दभाष्यमें भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जीने कहा है कि "एवं सविज्ञानपदार्थविचारे प्रस्तुते प्रागपरप्रकृतेर्भोग्यभूताया स्वरूपभेदौ निर्दिश्याथ भोक्तृत्वेन तदध्यक्षायाः परायाः स्वरूपमाह-अपरेति। इदमुपदिष्टाष्टविधा प्रकृतिरपरा भोग्यभूतत्वादनुत्कृष्टा। तुना ह्यस्या विजातीयत्वमुच्यते। इतोऽस्याः प्रकृतेः सकाशादन्यां जीवभूतां जीवरूपां मे सर्वेश्वरस्य मम परामुत्तमां प्रकृतिं विद्धि। ययेदं जगत् स्थावरजङ्गमात्मकं सर्वं धार्यते ॥५॥"

(गीताका आनन्दभाष्य ९।५)

अर्थ—भगवान् आनन्दभाष्कर जी कहते हैं कि— इस प्रकार विज्ञानसहित पदार्थविचार के प्रस्तुत होनेपर प्रथम भोग्यरूप अपरप्रकृतिके स्वरूप और भेदों को दिखला कर भगवान् अब

कालनामैश्वरो देहः कारणत्वोपपादकः ।
उक्तञ्च द्वयमेवात्र कुतश्चेदुच्यते यतः ॥३५॥
कालस्य सहकारित्वे चोपयोगो न चान्यथा ।
अत्रोपादानतायाञ्चोपयोगः कथितो द्वयोः ॥३६॥

भोक्तारूपसे अपराप्रकृतिकी अध्यक्षरूप परा प्रकृति के स्वरूपको 'अपरेयमितस्त्वन्यां' इस श्लोकके द्वारा कहते हैं । यह कथित आठ प्रकारकी प्रकृति अपरा प्रकृति है । भोग्यरूप होनेसे यह प्रकृति अनुत्कृष्ट (उत्कृष्टभिन्न घटिया) है । इस लिये इसे अपरा प्रकृति कहते हैं । तु शब्दसे इस प्रकृतिकी विजातीयता कही गई है अर्थात् अपरा प्रकृति पराप्रकृतिकी सजातीय नहीं है किन्तु विजातीय है । इस अपराप्रकृतिसे भिन्न जीवरूप प्रकृतिको परा प्रकृति अर्थात् मेरी उत्तम प्रकृति समझो । यह स्थावरजंगमरूप सम्पूर्ण जगत् इस परा प्रकृतिके द्वारा धारण किया जाता है ।

इसलिए प्रकृतिशरीरकब्रह्म जगत्का उपादान कारण है' इसका अर्थ हुआ कि 'चेतनाचेतनोभयप्रकृतिशरीरक ब्रह्म जगत्का उपादान कारण है' । अतः वादीकी शंका निर्मूल है ॥३३॥३४

शंका—अब शंका यह होती है कि—'भगवान्की जगत्कारणताका उपपादक (साधक) भगवान्का कालनामक शरीर भी है । आपने तो यहाँ पर भगवान्की जगत्कारणताके उपपादकरूपसे प्रकृति और जीव रूप दो शरीरोंको ही कहा है । यह अनुचित है ।

नित्यमेव मिथो युक्तौ चेतनाचेतनावुभौ।
यतः शास्त्रेण संसिद्धमनादित्वं तयोर्द्वयोः ॥३७॥

समाधान–भगवान् श्रीराम प्रकृतिपुरुषशरीरीरूपसे जगत्के उपादान कारण हैं, 'तथैव बहु स्याम्' इससङ्कल्प तथा सर्वज्ञत्वादिगुणशालीरूपसे जगत्के निमित्तकारण हैं तथा कालशरीरीरूपसे जगत्के सहकारीकारण हैं। इसलिये कोई दोष नहीं है। क्योंकि यहाँ पर भगवान्की जगदुपादानतामें ही प्रकृति और पुरुष दोनोंका उपयोग कहा गया है। अतः कोई दोष नहीं है। क्योंकि ईश्वरकी जगदुपादानकारणताके उपपादक प्रकृति और पुरुष दो ही हैं। कालका उपयोग तो भगवान्की जगत्सहकारीकारणतामें है। अर्थात काल भगवान्की जगत्सहकारीकारणतामात्रका ही उपपादक है जगदुपादानकारणता का उपपादक नहीं है। इसलिये 'प्रकृतिपुरुषशरीरक ब्रह्म जगत्का उपादनकारण है' हमारा यह कथन सर्वथा उचित ही है अनुचित नहीं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

'गौरनाद्यन्तवती' (आदि और अन्तशून्य परिवर्त्तनशील प्रकृति) तथा 'न जायते म्रियते वा विपश्चित्' (जीवात्मा न उत्पन्न होता है और न मरता है) इत्यादि शास्त्रवचनों से प्रकृति और जीव दोनों की अनादिता सिद्ध है। इसलिये प्रकृति और जीव दोनों नित्य ही परस्पर संयुक्त हैं। 'संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरञ्च' इत्यादि श्रुतिमें भी कहा गया है कि–क्षर अर्थात् प्रकृति और अक्षर अर्थात् पुरुष (जीव) दोनों परस्पर संयुक्त हैं ॥३७॥

तयोः संयोगरूपस्य संसारस्याप्यनादिता ।
मिथश्च मिलितावेव कार्यभावाय तावुभौ ॥३८॥
ईशश्चानन्यथासिद्धो द्वारता च तयोर्यतः ।
द्वारिणश्चान्यथासिद्धिर्द्वारेण सम्मता न हि ॥३९॥

ऊपर कहा जा चुका है कि प्रकृति और जीव दोनों अनादि तत्त्व हैं और वे दोनों नित्य परस्पर संयुक्त ही रहते हैं । इसलिये उन दोनोंका (प्रकृति और पुरुष दोनोंका) संयोगरूप संसार भी अनादि ही है । वे दोनों परस्पर मिलकर ही कार्यताका सम्पादन करते हैं। अर्थात् जगत्को उत्पन्न करते हैं ॥ ३८ ॥

शंका—अब शंका यह होती है कि यदि प्रकृति और पुरुष (जीव) से ही जगत् उत्पन्न होता है तो ईश्वर अन्यथा सिद्ध हो जायगा ।*

समाधान—इस शंकाका समाधान किया जाता है कि नित्य संयुक्त प्रकृति और पुरुषसे जगतके उत्पन्न होने पर ईश्वर अन्यथा सिद्ध नहीं हो सकता है। इसका कारण यह है कि जगत्रूपकार्यकी उत्पत्तिमें प्रकृति और पुरुष द्वार (व्यापार) हैं और ईश्वर द्वारी अर्थात्

---

* अन्यथासिद्ध—कार्यसे नियतपूर्वर्ती कारणके साथमें रहने वालेको 'अन्यथासिद्ध' कहते हैं । यथा—घटरूप कार्यसे नियतपूर्ववर्त्ती कारण कपाल कुम्भकार दण्ड चक्र चीवरादिसे ही घटरूपकार्य सम्पन्न हो जाता है। अतः कुम्हारका गधा अन्यथा सिद्ध कहा जाता है, क्योंकि गधे के बिना भी घटरूप कार्य उत्पन्न हो जाता है।

विश्वोपादानता चेशे द्वारता चिति चाचिति ।
चिदचितोर्विशेषोऽयं कालतत्त्वाद् बुधैर्मतः ॥४०॥
वास्तविकं न किन्त्वेतदनृतं चिदचिद्द्वयम् ।

द्वारवाला (व्यापारवाला) है । 'द्वारसे द्वारीकी अन्यथा सिद्धि नहीं होती है ।' यह सर्व दार्शनिकों का माना हुआ सिद्धान्त है । तात्पर्थ यह है कि पूर्वमें कहा जा चुका है कि ईश्वर जगत्का सद्वारक उपादान कारण है अन्यथा ईश्वर विकारी हो जायगा तो उसकी निर्विकारता नष्ट हो जायगी । जब प्रलयकाल समाप्त हो जाता है और सृष्टिकाल प्राप्त होता है तो जीवोंके उद्धार के लिये ईश्वर सङ्कल्प करता है कि 'मैं बहुत हो जाऊँ' (तदैक्षत बहु स्याम्) तब वह ईश्वर जीवोंके कर्मानुसार प्रकृति और पुरुषरूप स्वशरीर द्वारा जगत्की सृष्टि करता है । इसलिये जगत्की सृष्टिमें पुरुष और प्रकृति द्वार हुए और शरीरूप पुरुष और प्रकृति दोनोंका शरीरी (आत्मा) द्वारवाला हुआ । अतः 'द्वारसे द्वारी अन्यथा सिद्ध नहीं होता है' इस दार्शनिक सिद्धान्तसे ईश्वर अन्यथा सिद्ध नहीं माना जाता है । इसलिये कोई दोष नहीं है ॥ ३९ ॥

काल तत्त्वसे चित् और अचित् अर्थात् पुरुष और प्रकृतिकी विशेषता यही है कि ईश्वरनिष्ठ जगदुपादानकारणताके द्वार प्रकृति और पुरुष हैं, काल नहीं है ॥ ४० ॥

शङ्का— ईश्वरके ऐश्वर्यके विषयमें वादी पुनः शंका करता है कि ईश्वरका ऐश्वर्य वास्तविक नहीं है किन्तु मिथ्या हैं । क्योंकि

ततश्चेशस्य चैश्वर्यं वास्तविकं भवेन्न हि ॥४१॥

नैवं परेशशक्तित्वाद् द्वयं सत्यं हि नानृतम् ।
अग्नेश्च दाहिका शक्तिः सत्यभूता न चान्यथा ॥४२॥

शक्तिद्वयं तथा चैशं सत्यमेव न चानृतम् ।
ऐश्वर्यं तत ईशस्य सत्यमेव मतं बुधैः ॥४३॥

ईश्वरका ऐश्वर्य चिदचिद्द्वयप्रयुक्त है। अर्थात् ईश्वरका ऐश्वर्य प्रकृति और पुरुषको लेकर ही है। किन्तु चित् और अचित् अर्थात् पुरुष और प्रकृति दोनों ही मिथ्या हैं वास्तविक नहीं हैं। क्योंकि वे माया द्वारा किए गए हैं। श्रुति भी कहती है कि "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" (इन्द्र मायासे बहुत रूपवाला होता है।) "नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं तम आसीत्") (उस समय न सत् था न असत् था केवल तम था) इसलिये चित् और अचित् अर्थात पुरुष और प्रकृति दोनों मायिक हैं। अर्थात् मिथ्या हैं। वास्तविक नहीं हैं। इसलिये चिदचित्प्रयुक्त ईश्वरका ऐश्वर्य भ मिथ्या ही है वास्तविक (पारमार्थिक) नहीं है ॥४१॥

समाधान– उक्त शंकाके समाधानरूपसे कहा जाता है कि वादीको ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि प्रकृति और पुरुष दोनों ही परमात्माकी शक्ति हैं। 'यस्यात्मा शरीरम्' तथा 'यस्य पृथवी शरीरम्' इत्यादि श्रुतियाँ समस्त चित् और अचित् तत्त्वोंको ईश्वरका शरीर कहती हैं। श्रीमद्वाल्मीकिरामायणमें श्रीब्रह्माजी ने भी सर्वेश्वर

भगवान् श्रीरामजी से कहा है कि "जगत् सर्वं शरीरं ते" (हे भगवान् श्रीराम यह समस्त चिदचिदात्मक जगत् आपका शरीर है ।) अतः चित् और अचित् दोनों ईश्वरके अपृथक्सिद्ध विशेषण हैं । अभी ऊपर कहा गया है कि ईश्वरकी जगदुपादानकारणताके द्वार चित् और अचित् तत्त्व हैं । इसलिये चित् और अचित् दोनों तत्त्व जगत्की सृष्टि करनेमें भगवान्के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं । अतः ये दोनों परमात्माकी शक्ति हैं । पुराणमें स्पष्टरूपसे कहा कि—" विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथाऽपरा । यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्टिता नृप सर्वगा ॥ हे नृप ? क्षेत्रज्ञनामक विष्णुभगवान्की परा शक्ति कही गई है । उनकी अपरा नामक दूसरी शक्ति भी है । सर्वमें वर्त्तमान क्षेत्रज्ञ शक्ति जिससे वेष्टित (लपेटी हुई) है । क्योंकि कार्योपयोगी अपृथक्सिद्ध विशेषणको ही 'शक्ति' कहते हैं । परमात्माकी शक्ति होनेसे चित् और अचित् दोनों सत्य हैं मिथ्या नहीं हैं । अग्निकी दाहजनक शक्ति सत्य है मिथ्या नहीं । अग्निकी शक्तिके समान सभी शक्तिमान् पदार्थोंकी शक्तियाँ सत्य ही होती हैं मिथ्या नहीं । इसलिये ईश्वरकी चित् और अचित् दोनों शक्तियाँ भी सत्य ही हैं मिथ्या नहीं । इसलिये बुद्धिमानों ने तत्प्रयुक्त ईश्वरके ऐश्वर्य को सत्य ही माना है

"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" इस श्रुतिका अर्थ है—इन्द्रशब्दवाच्य परमात्मा अपने संकल्परूप मायासे बहुत प्रकारका होता है । तथा 'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं तम आसीत्' इस श्रुतिका अर्थ है—उस समयमें असत अर्थात् कारणात्मक महत्तत्त्वादि तथा सत

प्रियमनुस्मरन्त्या हि पुलकिताङ्गतादिभिः ।
प्रियायाः प्रेमसीमान्त्यं लोके गम्यं यथा तथा ॥४४॥

श्रीरामं स्मरतः श्रीमद्रामभक्तस्य धीमतः ।
गम्या भक्तिपराकाष्ठा लिङ्गैश्च रोदनादिभिः ॥४५॥

अर्थात् कार्यात्मक आकाशादि कुछ भी नहीं थे । उस समय तमः शब्दवाच्य केवल प्रकृति ही थी । ऐसा अर्थ न करके यदि ऐसा कहें कि उस समयमें न असत् था न सत् था । तो व्याघात ही होगा । क्योंकि यदि असत् न होगा तो सत् होगा ही और यदि सत् न होगा तो असत् होगा ही । अतः सत् और असत् दोनों नहीं हैं । ऐसा कहना व्याघातदोषयुक्त ही है । इसलिये ऊपर कहा हुआ श्रुतिका अर्थ ही उचित अर्थ है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

भक्तिकी पराकाष्ठाके चिन्ह

उक्त प्रकारसे वादीकी शंकाओंका समाधान करके अब भक्तिकी पराकाष्ठा (अन्तिममर्यादा=चरम सीमा) को प्राप्त हुए श्रीरामभक्तके चिन्ह कहे जाते हैं—

लोकमें अपने प्रियतमका अनुस्मरण करने वाली प्रियतमाके अङ्गों का पुलकित होना इत्यादि चिन्होंसे उसके प्रेमकी अन्तिम मर्यादा जैसे अनुमित होती है, वैसे ही भगवान् श्रीरामजी को स्मरण करने वाले बुद्धिमान् श्रीरामभक्तके रोदनादि हेतुओंसे भक्ति की पराकाष्ठा

द्वेषक्रोधभयादिभ्योऽपि भक्तिर्गम्यते ननु।
द्वेषिक्रोधिविभीतानां रक्षसां मुक्तिदर्शनात् ॥४६॥
मैवं यतश्च भक्तेषु द्वेषादेः सम्भवो न हि।

का अनुमान होता है। भगवान्‌ने उत्कृष्ट भक्तके चिन्होंको स्वयं कहा है कि—

"एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः।"

(श्रीमद्भागवत)

श्रीमद्भागवत में भगवान् स्वयं कहते हैं कि—ऐसे व्रतवाला मेरा भक्त अपने प्रियतम भगवान् के नामकीर्त्तन से उत्पन्न हुए अनुराग-वाला तथा द्रवितचित्तवाला होता है, तब वह उच्च स्वरसे हंसता है रोता है भगवान् को पुकारता है और गाता है तथा लोक की परवाह न करके पागल की भाँति नृत्य करता है॥ ४४ ॥ ४५ ॥

शंका—वादी शंका करता है कि—भगवान्‌से द्वेष करने वाले, भगवान् पर क्रोध करने वाले तथा भगवान्‌से भय करने वाले राक्षसों की मुक्ति शास्त्रों में देखी गई है। इसलिये द्वेष क्रोध और भय इत्यादि से भी उन राक्षसों में भक्तिका अनुमान किया जा सकता है॥ ४६॥

समाधान—उक्त शंकाका समाधान किया जाता है कि वादी का कथन उचित नहीं है। क्योंकि भक्तोंमें द्वेष क्रोध तथा भय इत्यादि असम्भवित हैं। अतः द्वेष क्रोध तथा भय इत्यादि हेतु भक्तिके

न भक्तिगमकास्ते तत्, स्वरूपासिद्धिरन्यथा ।।४७।।
अतिद्वेषसमुत्पन्नसततस्मरणादिना ।
पापानां हि विनिष्टत्वाद्‌न्तिमे समये त्वथ ।।४८।।
सञ्जाता च परा भक्तिः श्रीरामे परमात्मनि ।
ततश्च राक्षसा मुक्ता मारीचरावणादयः ।।४९।।

अनुमापक (अनुमिति कराने वाले) नहीं हैं। यदि इन हेतुओंसे विशिष्ट भक्तिके अनुमान का प्रयोग किया जायगा तो स्वरूपासिद्धि नामक दोष होगा * ।। ४७ ।।

शङ्का— अब शङ्का यह होती है कि तब उक्त द्वेषी क्रोधी तथा भयग्रस्त राक्षसोंकी मुक्ति कैसे हुई ?

समाधान— उक्तशंकाका समाधान यह है कि भगवद्विमुख होनेमें मुख्यकारण जीवके पाप हैं। पक्षियोंको भगानेके लिये नहीं किन्तु

---

* स्वरूपासिद्धिका लक्षण मैंने मानरत्नावली में लिखा है कि—
"पक्षे हेत्वभावो हि स्वरूपासिद्धता मता ।।" (मानरत्नावली)

अर्थ—पक्षमें हेतुके न रहने पर हेतु 'स्वरूपासिद्ध' नामक हेत्वाभास कहा जाता है। यथा—'शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वात्'

अर्थ—शब्द गुण है, क्योंकि उसमें चाक्षुषत्व है। यहाँ चाक्षुत्वरूप हेतुमें स्वरूपासिद्धि नामक दोष है। इसलिए वह (चाक्षुषत्व) स्वरूपासिद्ध नामक हेत्वाभास हुआ। क्योंकि शब्दरूप पक्षमें चाक्षुषत्वरूप हेतु रहता ही नहीं है।

अवतारिपरश्चायमवतारपरोऽपि वा ।
भक्तिरूपानुरागो हि ? किं युक्तमुच्यते यतः ॥५०॥

बालक प्रसन्न होकर अपने आनन्दके लिये ताली बजाते हैं तो भी डरकर खेतमें दाना खानेके लिये आए हुये पक्षी उड़ जाते हैं। उसी प्रकार मुमुक्षु होकर नहीं किन्तु बुभुक्षु होकर वे द्वेषी क्रोधी और भयग्रस्त मारीच रावणादि राक्षस अति द्वेष इत्यादिसे सतत भगवान् का स्मरण नामरटन तथा दर्शन करते रहते थे। अतः उनके पाप अन्तसमय नष्ट हो गये थे। तब वे भगवद्विमुख नहीं रहे और उनकी श्रीराम में परा भक्ति उत्पन्न हुई थी। इसलिये वे मुक्त हो गये। श्रीब्रह्माजी ने श्रीवाल्मीकिरामायणमें कहा है कि—

"अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः ।
अमोघा ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि ॥"

अर्थ—श्रीब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवान् श्रीराम आपका दर्शन अमोघ अर्थात् अन्यर्थ अर्थात् मुक्तिप्रद है और आपका स्तव भी अमोघ है। हे भगवान् श्रीराम पृथ्वी पर आपकी भक्तिवाले जो मनुष्य हैं वे भी अमोघ हो जावेंगे। अर्थात् मुक्त हो जावेंगे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

भगवान् तथा भगवदवतार की भक्ति

अत्र संशय होता है कि भक्तिरूप अनुराग अवतारीविषयक है अथवा अवतारविषयक भी है ? दोनों पक्षों मेंसे कौनसा पक्ष उत्तम है और क्यों ? ॥ ५० ॥

तद्वाक्यशेषतश्चायमवतारपरोऽपि हि ।
दृश्यते त्ववतारेषु चैश्वर्यमवतारिणः ॥५१॥

श्रीमद्भगवद्गीता में अवतारप्रतिपादक वाक्य है—

"अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥ ६॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥७॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥८॥ (गीता ४)

अर्थ— भगवान्‌ने कहा कि मैं अजन्मा हूँ, अविकारी हूँ तथा भूत अर्थात् प्राणीमात्रका ईश्वर अर्थात् नियन्ता हूँ ऐसा हुआ ही मैं मेरे मुख्य स्वभावका अनुसरण करके आत्ममायया मेरे संकल्परूप ज्ञान से अर्थात् कर्मवशात् नहीं किन्तु मेरी इच्छासे ही प्रकट होता हूँ । हे अर्जुन ! जब जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्मका अभ्युत्थान होता है तब तब मैं प्रकट होता हूँ—अवतार लेता हूँ । साधु पुरुषों के परिरक्षण करनेके लिये, दुष्कर्मकारियोंके विनाशके लिये और धर्म (मदुपासनरूप परम धर्म—श्रीवैष्णवधर्म) के सम्यक स्थापन करनेके लिये मैं युग युगमें प्रकट होता हूँ ।

भगवान्‌का यह वाक्य अवतार प्रतिपादनपरक है । अर्थात् भगवान्‌का यह वाक्य भगवान्‌के अवतारका प्रतिपादन करनेवाला

जन्मकर्मविदः पुंसो जन्माभाव उदीरितः।

है इस वाक्यके शेष रूपसे भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

(गीता ४।९)

अर्थ— भगवान् कहते हैं कि—'मेरे जन्म और कर्म दोनों दिव्य हैं' इस प्रकार जो वास्तविकरूपसे जानता है। हे अर्जुन वह पुरुष शरीर को त्याग कर अर्थात् मरनेके पश्चात् पुनः जन्मको नहीं प्राप्त होता है। अर्थात् वह पुरुष कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है और अनन्त आनन्द–सिन्धु मुझको प्राप्त होता है।

'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा........' इत्यादि भगवदवतारके प्रतिपादक वाक्यका शेषभूत 'जन्म कर्म च मे दिव्यम्........' इत्यादि वाक्य बतलाता है कि भगवदवतारके जन्म और कर्मका ज्ञान प्राणी को मोक्ष देता है। यह भगवदवतारके जन्म और कर्मका ज्ञान भक्ति द्वारा ही प्राणीको मुक्ति देता है। अतः सिद्ध हुआ कि मोक्ष देनेवाला भक्तिरूप अनुराग भगदवतारविषयक भी है। अर्थात् जैसे अवतारी भगवान् श्रीरामकी भक्ति प्राणीको मोक्ष देती है उसी प्रकार भगवान्‌के अवतारकी भक्ति भी प्राणीको मोक्ष देती है। इसका कारण यह है कि भगवान्‌के अवतारोंमें भी अवतारी रूप भगवान्‌के मुक्तिप्रदत्व आदि ऐश्वर्य शास्त्रोंमें दृष्टिगोचर होते हैं। यह अवश्य ध्यानमें रखने योग्य है कि अवतारोंमें पूर्णावतारों तथा अंशावतारोंकी ही भक्ति मोक्षप्रद है ॥५१॥

भगवदवतारके जन्म और कर्मके ज्ञाता पुरुषके जन्माभावको

श्रीमद्भगवता चोक्तं फलं स्वमाप्तिलक्षणम् ॥५२॥
सत्यं किमथवाऽसत्यमीशस्य जन्म कर्म च ।

तथा स्वप्राप्तिरूप मोक्ष फलको भी भगवान्ने उक्त प्रकारसे गीतामें कहा भी है ॥५२॥

भगवान्के अवतार सत्य तथा दिव्य हैं ।

शंका—वादी शंका करता है कि-"अशरीरं वा व सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः" (शरीररहितको ही प्रिय और अप्रिय स्पर्श नहीं करते हैं ।) इस श्रुतिकथनानुसार जन्म ग्रहण करनेवालेको नियम से प्रिय और अप्रिय होते हैं । और "अजायमानो बहुधा विजायते" यह श्रुति तो कहती है कि नहीं उत्पन्न होते हुए भी भगवान् बहुत प्रकारसे होते हैं । भगवान्ने स्वयं भी कहा है कि-"बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ! (गीता) (हे अर्जुन मेरे और तेरे बहुत जन्म बीत गये हैं ।) इस लिये शंका होती है कि-"भगवान् के जन्म और कर्म सत्य हैं अथवा मिथ्या है ? ईश्वरको यदि शरीर ग्रहण करनेवाला मानेंगे तो ईश्वरको ऊपर कहे हुए प्रकारसे प्रिय और अप्रिय दोनों अवश्य ही होंगे । तब ईश्वरकी हेयप्रत्यनीकता (त्याज्यगुणविरोधिता) की हानि होगी । यदि ईश्वरको शरीर ग्रहण करने वाला न मानें अर्थात् जन्म ग्रहण करने वाला न मानें तो 'अजायमानो बहुधा विजायते' इस श्रुति और 'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन !' इस भगवाद्वाक्यका विरोध होगा । इसलिये मानना चाहिए कि प्रिय और अप्रिय से विहीन सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामका देह-धारण मिथ्या है ।

देहिनं स्पृशतो नूनं प्रियाप्रिये यतस्ततः ॥५३॥
मिथ्या प्रियादिहीनस्य रामस्य देहधारणम् ।
स्वेच्छामात्रोद्भवान्नैवं दिव्यं सत्यं त्वतो मतम् ॥५४॥
नन्वाप्ताखिलकामस्यावतारे किं प्रयोजनम् ?

समाधान—वादीकी उक्त शंकाके समाधानके लिये कहा जाता है कि वादी उक्त प्रकारसे नहीं कह सकता क्योंकि भगवान् श्रीरामका देहधारण अर्थात् जन्म स्वेच्छामात्रसे होता है वह दिव्य अर्थात् अप्राकृत है। इसलिए कोई दोष नहीं है।

तात्पर्य यह है कि कर्माधीन शरीर धारण ही प्रियाप्रिय स्पर्शका कारण होता है। भगवान् श्रीरामका शरीरधारण तो कर्माधीन नहीं है किन्तु स्वेच्छामात्राधीन है। इसी प्रकार प्राकृत शरीरधारण ही प्रियाप्रिय स्पर्शका कारण बनता है। भगवान् श्रीरामका शरीरधारण तो प्राकृत शरीरधारण नहीं है किन्तु दिव्य शरीरधरण है अर्थात् अप्राकृत शरीरधारण है। इसलिये वह प्रियाप्रियस्पर्शका कारण नहीं हो सकता। भगवान्ने स्वयं ही कहा है कि—"जन्म कर्म च मे दिव्यम्' इस लिए भगवान्‌की त्याज्यगुणविरोधिताकी हानि भी नहीं होती है। इसलिये "भगवान् के जन्म और कर्म दिव्य है अतः सत्य हैं" ऐसा मानने में कोई दोष नहीं है। अतः वादीकी शंका अनुचित है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अवतारका प्रयोजन

शंका—अब शंका यह होती है कि—सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम तो अवाप्त-समस्तकाम हैं। उन्हें किसी भी वस्तुकी कमी नहीं है। तब उनके

सर्गादिना च सम्पन्ना तस्माल्लीला मता न तत् ।५५।
नैवं यतो हि कारुण्यं मतं मुख्यं प्रयोजनम् ।

अवतार ग्रहण करने का प्रयोजन क्या है ? उनकी लीलाको अवतार ग्रहण करने का प्रयोजन नहीं मान सकते हैं, क्योंकि उनकी लीला तो जगत्की सृष्टि, स्थिति तथा लय से भी सम्पन्न हो जाती है । जगद्-गुरु श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी ने भी 'बोधनक्षत्रमाला' नामक प्रबन्ध में कहा है कि—

"उपादानं निमित्तं च सर्वस्य जगतो विभुः ।
श्रीराम एव, तल्लीला जगत्सृष्ट्यादयो मताः ॥"

अर्थ—विभु परिमाणवाले अर्थात् सर्वव्यापक भगवान् श्रीरामजी ही समस्त जगत्के उपादान और निमित्तकारण हैं । जगत्की सृष्टि स्थिति और लय उन भागवान् श्रीरामकी लीला हैं ।

समाधान—उक्त शंकाका समाधान किया जाता है कि—उक्त प्रकारसे नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि भगवदवतारका मुख्य प्रयोजन 'करुणा' को माना गया है । श्रीमद्भागवत् में कहा है कि—

" मूर्त्तिं नः पुरुकृपया बभार स त्वं
संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ।
यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्या-
मादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्य ! ॥"

(श्रीमद्भागवत पञ्चमस्कन्ध)

अर्थ—श्रीनारद जी ने कहा कि—वह आप हमारे ऊपर बहुत कृपाकरके मूर्त्ति अर्थात् शरीरको धारण करते हो जिन आप श्रीमान्में

जीवानां मुक्तिहेतुर्यद् रामजन्मादिसंस्मृतिः ॥५६॥

कार्यकारणरूप यह समस्त जगत् संशुद्धरूपसे प्रकाशित है । हे उदारवीर्य प्रभो ! जो आप स्वजनोंके मनोंको ग्रहण करने के लिये मृगपति हो कर लीला को ग्रहण किये हैं ।

इस श्रीमद्भागवतके वचनसे विदित होता है । कि–भगवान्के अवतार ग्रहण करने का मुख्य प्रयोजन भगवान् की करुणा ही है । क्योंकि भगवान् श्रीरामके जन्म आदि की सम्यक् स्मृति ही जीवोंकी मुक्तिका हेतु है । अत एव श्रीब्रह्मा जीने भगवान् से कहा है कि—

"अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः ।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि ॥"

(वाल्मीकिरा-यु. ११७।३०)

अथ–श्रीब्रह्माजी कहते हैं कि–हे भगवान् श्रीराम ! आपका दर्शन अमोघ है । आपका सम्यक् स्तव भी अमोघ है । तथा हे भगवान् श्रीराम ! आपमें भक्ति रखनेवाले अर्थात् आपका प्रेमपूर्वक निरवच्छिन्न स्मरण करनेवाले पुरुष भी पृथिवीतल पर अमोघ ही होंगे अर्थात् अपने जन्मको सफल ही करेंगे अर्थात् आपको प्राप्त होंगे ही ।

तात्पर्य यह है कि जब इस अपार भवसागरमें निमग्न जीव अपने अनन्त जन्मोपार्जित कर्मोंके नानाविध फलोंको भोगते भोगते अत्यन्त दुखी हो जाते हैं तब भक्तवत्सल भगवान् श्रीराम करुणा करके अवतार धारण करते हैं । तब उस समयके जीव केवट शबरी आदि की तरह भगवान् श्रीरामके अमोघ दर्शन स्तव और उनके जन्म तथा पावन चरित्रको स्मरण कर भवसागर पार करके भगवान्को प्राप्त

सर्वेश्वरविभूतीनां भक्तिर्मुक्तिप्रदा ननु ।
सर्वेशस्यावताराणां भक्तिवदिति चेन्न हि ॥५७॥

करते हैं। अन्य कालीन लोग भी भगवान् की मूर्त्ति (अर्चावतार) के पूजन दर्शन स्तव तथा श्रीरामायणके श्रवणसे तथा भगवान् के पावन चरित्रों और स्वरूपके सतत स्मरणसे भवसागरको तर कर भगवान् श्रीरामको प्राप्त होते हैं। इसलिये भगवान् श्रीरामके अवतार ग्रहण करने का मुख्य प्रयोजन भगवान्‌की करुणा ही है। इसलिये उक्त शंकाको किसी प्रकारसे अवकाश नहीं प्राप्त होता है ॥ ५५॥५६॥

विभूतियोंकी भक्तिसे मुक्ति नहीं होती

शंका—ऊपर कहा जा चुका है कि—अवतारी सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम तथा भगवान् श्रीरामके अवतारोंकी भक्ति करनी चाहिए। अब वादी फिर शंका करता है कि—अर्जुनने भगवान् से पूछा कि हे भगवान् किन पदार्थोंमें मैं आपका चिन्तन करूँ।" तव भगवान्‌ने अपनी विभूतियोंको अर्जुनसे कहा। वादी कहता है कि—भगवान्‌के अवतारोंकी भक्तिके समान ही भगवान्‌की विभूतियोंकी भक्ति भी मुक्ति देनेवाली है। क्योंकि अर्जुनके ध्येयविषयक प्रश्नके उत्तरमें भगवान्‌ने अपनी विभूतियों का वर्णन किया है। इसका अभिप्राय यही हो सकता है कि विभूतियों की भक्ति भी मुक्तिप्रदा है। क्योंकि भगवान्‌ने स्वयंको भी अपनी विभूतियोंमें ही परिगणित किया है। विभूतिरूप भगवान् की भक्ति भी मुक्तिप्रद है इसका निषेध तो किया ही नहीं जा सकता है।

समाधान—उक्त शंकाका समाधान किया जाता है कि—ऐसा

अवतारेषु चैश्वर्यमैश्वरं वर्त्तते यतः।
नेशभिन्नविभूतौ तत्, तत् तद्भक्तिर्न मुक्तिदा ॥५८॥
राजप्रतिग्रहद्यूते निषिद्धे चापि शास्त्रतः।

नहीं है। अर्थात् 'अवतारभक्तिके सदृश विभूतिभक्ति भी मोक्षप्रद है' यह कथन उचित नहीं है। अवतारोंमें सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामका मुक्तिप्रदत्व इत्यादि ऐश्वर्य शास्त्रोंमें दृष्टिगोचर होता है। अतः अवतारों की भक्तिको मुक्तिप्रद माना गया है। किन्तु ईश्वरभिन्न ईश्वरकी विभूतियोंमें मुक्तिप्रदत्वरूप ईश्वरका ऐश्वर्य दृष्टिगोचर नहीं होता है। अतः ईश्वरकी विभूतियोंकी भक्तिको मुक्तिप्रद नहीं मानते हैं ॥५७॥५८॥

"द्यूतसंव्यवहारी च प्राणिहिंसा रताश्च ये। वैतरण्यां निपात्यन्ते ये नरा बन्धुघातकाः ॥" (यमस्मृति) (द्यूत व्यवहाररूप जीविकावाला पुरुष, प्राणिहिंसारत तथा बन्धुघातक लोग वैतरणीनदीमें गिराये जाते हैं।) तथा "प्रतिग्रहे सूनिचक्रिध्वजिवेश्यानराधिपाः। दुष्टा दशगुणं पूर्वात् पूर्वादेते यथाक्रमम् ॥" (याज्ञवल्क्य) (सूनि अर्थात् हिंसक, चक्री अर्थात् कोल्हूचलानेवाला तेली, ध्वजी अर्थात् मदिराविक्रयकरनेवाला वेश्या तथा राजा ये सब दानलेनेमें क्रमशः पूर्व पूर्वसे दशगुना अधम माने गये हैं।) इत्यादि शास्त्र वचनों द्वारा राजप्रतिग्रह तथा द्यूत इत्यादि विभूतियोंका निषेध भी किया है। इससे भी विदित होता है कि विभूतियोंकी भक्ति मुक्तिप्रद नहीं है। यदि विभूतिकी भक्ति मुक्तिप्रद होती तो उक्त शास्त्रद्वारा इन विभूतियोंका निषेध न किया जाता। इसलिये 'ईश्वरकी विभूतियोंकी उपासना कल्याणकी कामना-

श्रेयस्कामैर्जनैस्तस्मादनुपास्या विभूतयः ॥५९॥
रामस्य ब्रह्मणस्तस्माद् भक्तिः कार्या मुमुक्षुभिः।

वाले पुरुष को न करना चाहिए, ।

अब वादी की शंकाके उस अंशका समाधान किया जाता है जो उसने कहा है कि – भगवान्ने स्वयंको भी अपनी विभूतियोंमें परिगणित किया है। 'विभूतिरूप भगवान्की भक्ति मुक्तिप्रद है।' इसका निषेध तो किया नहीं जा सकता है। वादी के कहने का तात्पर्य यह है कि यदि अन्य विभूतियाँ अभजनीय हैं तो 'वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि' इसरूपसे विभूतियोंमें परिगणित भगवान् वासुदेव भी अभजनीय क्यों नहीं हैं?

उक्त शंकाका उत्तर यह है कि भगवान्ने अपने ऐश्वर्य विशेषके ज्ञापन करने के लिये ही अपनेको विभूतिरूपसे कहा है। वास्तवमें तो 'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि-सन्' इस भगवत्कथनानुसार भगवान्में अवतारदशामें भी समस्त ऐश्वर्य रहते ही हैं। इसलिये वे सदा भजनीय ही रहते हैं। इसीलिये भगवान्ने कहा है कि--

"अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
(गीता ८।५)

भगावान् श्रीरामानन्दाचार्यजी आचार्यसार्वभौमने भी कहा है कि— "यः पुमानन्तकाले प्रारब्धदेहावसाने मां सर्वेश्वरं सर्वस्यात्मा-नमनुध्यायन् निजकलेवरं हित्वा देवयानपथा प्रयाति स मद्भाव-माविर्भूतगुणाष्टकः सन् मत्सायुज्यं प्राप्नोति न तु मत्स्वरूपैक्यम्।"

यतो मुक्तिप्रदा सेति लोके वेदे च विश्रुतम् ॥६०॥

इत्युपनिषद्भाष्यकारपण्डितसम्राट्स्वामिश्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठाचार्यप्रणीते भक्तिवादे तृतीयः परिच्छेदः ॥३॥

अर्थ—भगवान् कहते हैं कि जो पुरुष अन्तकालमें अर्थात् प्रारब्धदेहके अवसानसमयमें सर्वके आत्मा मुझ सर्वेश्वरका ध्यान करता हुआ अपने शरीरको त्याग कर देवयानमार्गसे अर्थात् अर्चिरादिमार्गसे जाता है, वह मद्भावको अर्थात् प्रकटित अष्टगुणोंवाला होकर मेरे सायुज्यको अर्थात् भोगसाम्यको प्राप्त होता है, मेरे स्वरूपैक्यको नहीं प्राप्तहोता है।

(गीताका आनन्दभाष्य ८।५)

भगवान्के इस कथनसे वे सदा भजनीय ही हैं। क्योंकि उनकी भक्ति जीवको मुक्ति देने वाली है।

"रामः शस्त्रभृतामहम्" इस वाक्यद्वारा भगवान् श्रीरामके विभूतिमें परिगणित होनेकी शंकाका समाधान तो इस प्रकार है। कि—यहाँ पर रामशब्दवाच्य श्रीपरशुराम जी हैं। इसका कारण यह है कि उस समय में श्रीपरशुराम जी सर्वशस्त्रधारियोंके मुख्य आचार्य थे। भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जी ने भी गीता के आनन्दभाष्य में ऐसा ही कहा है ॥५९॥

इस लिये मोक्षकी आकांक्षावाले पुरुषोंको परब्रह्म भगवान् श्रीरामकी ही भक्ति करनी चाहिए। इसका कारण यह है कि 'श्रीरामभक्ति मुक्तिप्रदा है' यह बात वेदमें तथा लोकमें प्रसिद्ध है ॥६०॥

इत्युपनिषद्भाष्यकारपण्डितसम्राट्स्वामिश्रीवैष्णवाचार्य वेदान्तपीठाचार्यप्रणीतायां विजयमालाख्यायां व्याख्यायां तृतीयः परिच्छेदः ॥३॥

अथ चतुर्थः परिच्छेदः

प्रस्तुत्य भजनं यस्मात् कीर्त्तनादेश्च वर्णिता।
उपकरणता, "भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते" ॥१॥

श्रवणादि साधन

अब चतुर्थ परिच्छेदमें श्रवणादि साधनोंका वर्णन किया जाता है। श्रवणादि दो प्रकार के हैं। प्रथम, श्रवण स्मरण कीर्त्तन आदि नव, जिन्हें नवधा भक्ति अथवा गौणी भक्ति कहते हैं। द्वितीय, श्रवण मनन और निदिध्यासन, जिन्हें परा भक्तिका बहिरङ्ग साधन कहा गया है।

"महात्मानस्तु मां पार्थ ! दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥" गी० ९।१३

अर्थ–भगवान् कहते हैं कि हे पार्थ ! दैवी अर्थात् सात्विक प्रकृतिके आश्रित महात्मागण मुझ सर्वेश्वरको अखिल जगत्का आदिकारण तथा अविनाशी जानकर अनन्यमनस्क होकर मेरा भजन करते हैं।

इस प्रकारसे भजनका प्रस्ताव करके "सततं कीर्त्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः। नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥" (गीता ९।१४) (भक्तिसे निरन्तर मेरा कीर्त्तन करते हुए मेरे लिये प्रयत्न करते हुए तथा मुझे नमस्कार करते हुए दृढ व्रतवाले महात्मागण नित्य सावधान होकर मेरी उपासना करते हैं) इस प्रकार

"ये भजन्ति तु मामेवं" भजने भक्तिसाध्यता।
अभिहिता, ततो गौणी मुख्यभक्त्यै मता च सा ॥२॥
साधनमन्तरङ्गं हि भक्तौ गौणी बुधैर्मता।
श्रवणमननेत्यादि बहिरङ्गं हि साधनम् ॥३॥
श्रवणाद्यनपेक्षापि भक्त्यै गौणी यतः क्षमा।
तस्यै गौण्यनपेक्षं तु श्रवणादि क्षमं न यत् ॥४॥
श्रवणादेरभावेऽपि भक्त्यर्थकीर्त्तनादिना।

कीर्तनादिको मुख्य भक्तिका उपकरण (साधन) कहा है और "समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥" (गी. ९।२९) (हे अर्जुन! सर्व भूतोंमें मेरा न कोई द्वेष्य (शत्रु) है और न कोई मेरा प्रिय है, जो लोग भक्तिसे मुझे भजते हैं वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ।) इस प्रकार भजनको (मुख्यभक्ति को) भक्तिसाध्य कहा है। इस लिये गौणी भक्ति अर्थात् श्रवण कीर्तन आदि नवधा भक्ति मुख्यभक्ति अर्थात् परा भक्तिका साधन मानी गई है ॥१॥२॥

बुद्धिमानोंने श्रवण कीर्तन आदि नवधा भक्ति (गौणी भक्ति) को मुख्यभक्तिका अन्तरङ्ग साधन और श्रवण मनन आदिको बहिरङ्ग साधन माना है ॥ ३ ॥

बुद्धिमानोंके इस प्रकारसे माननेका कारण यह हैं कि श्रवण मननादि साधनोंका आश्रय लिये बिना ही गौणी भक्ति मुख्यभक्तिके उत्पादनमें समर्थ है। इसीलिये बुद्धिमानोंने गौणी भक्तिको मुख्यभक्ति (पराभक्ति) का अन्तरङ्ग साधन माना है। श्रवण मननादि साधन तो गौणी भक्तिका आश्रय लेकर ही अर्थात् गौणी भक्तिके द्वारा ही मुख्य भक्तिको उत्पन्न कर सकते हैं। गौण

साहचर्याद्धि सिद्धैव तत्रापि भक्तिहेतुता ॥५॥
उपक्रमोपसंहृत्योरन्तराले य उद्यमाः ।

भक्तिका आश्रय लिये बिना श्रवणमननादि साधन मुख्यभक्तिको उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। अतः बुद्धिमानोंने श्रवणमननादिकों को मुख्यभक्तिका बहिरङ्ग साधन माना है ॥ ४॥

शंका–अब शंका यह होती है कि–आप "सततं कीर्त्तयन्तो माम्" इस श्लोक के प्रमाण से नवधा गौणी भक्तिको मुख्यभक्तिका अन्तरंगसाधन मानते हैं। किन्तु इस श्लोकमें तो कीर्तन और वन्दन भक्तिका ही मुख्यभक्तिके साधनरूपसे कथन है। अतः अवशिष्ट श्रवणादि सात भक्तियोंको भी मुख्यभक्तिका साधन कहना अप्रामाणिक है।

समाधान–उक्त शंकाका समाधान यह है कि–"श्रवणं कीर्तनं विष्णोःस्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥" (भागवत) इस प्रकारसे श्रवणकीर्त्तनादिका सहपाठ होनेसे साहचर्य है। इसलिये 'सततं कीर्त्तयन्तो माम्' इस श्लोकमें श्रवणादिके कथन न होने पर भी इस श्लोकमें पठित कीर्त्तन और वन्दन सहचरित अवशिष्ट श्रवणादि सात भक्तियों का ग्रहण होता है। अतः कीर्तन और वन्दनकी भाँति अवशिष्ट श्रवणादि सातमें भी मुख्यभक्तिकी-हेतुता सिद्ध ही है। इसलिये कोई दोष नहीं है ॥५॥

उक्त कथन को स्पष्ट किया जाता है कि–परभक्तिके * उपक्रम

---

* "महात्मानस्तु मां पार्थ" इस श्लोकसे भक्ति का उपक्रम तथा "ये भजन्ति तु मां भक्त्या" इस श्लोकसे भक्ति का उपसंहार किया गया है।

देहस्य मनसो वाचो भक्तेः शेषाश्च ते यतः ॥६॥

वर्त्तते तेषु हेतुर्व्यापारेषु भक्तिकाण्डता ।
अदुष्टं भक्तिशेषत्वं श्रवणादौ ततोऽस्ति हि ॥७॥

कथं ननूपकुर्वन्ति भक्तौ तु श्रवणादयः ? ।
इति चेच्छ्रूयतां ते च वासनाया विनाशतः ॥८॥

श्रवणादिमतां नृणां कुर्वन्ति हृदयं शुचि ।
तत्राथ रामचन्द्रस्य मुख्या भक्तिर्हि जायते ॥९॥

और उपसंहारके मध्यमें किये गये श्रवण पादसेवन अर्चन वन्दन तथा दास्य (दासकर्म) शरीरके व्यापार, कीर्त्तन रूप वाणीका व्यापार तथा स्मरण, सख्य और आत्मनिवेदन रूप मनके व्यापार परमभक्तिके शेष (अंग) हैं । इसका कारण यह है कि ये सब व्यापार भक्तिकाण्ड (उपासनकाण्ड) रूप हैं । इसलिये श्रवण कीर्त्तनादि नवधा गौणी भक्तिको परभक्तिका शेष (अङ्ग=हेतु) मानने में कोई दोष नहीं है ॥६॥७॥

अब जिज्ञासा होती है कि श्रवण कीर्त्तन तथा स्मरण इत्यादि नवभक्तियाँ परभक्ति में किस प्रकार उपकार करती हैं ? इसलिये कहा जाता है कि वे (श्रवणादि नवभक्तियाँ) वासनाका विनाश करके नवधा भक्ति करने वाले भक्त लोगोंके हृदयको पवित्र करती हैं । पश्चात् उस पवित्र हृदयमें भगवान् श्रीराम जी की परानुरागरूप मुख्यभक्ति उत्पन्न होती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

उपकर्त्री नु गौणी चेद् भक्तिसाध्या च सा कथम्।?
केचित् तत्र फलाधिक्यं मन्यन्ते मुख्ययोगतः ॥१०॥
मुख्यो न भक्तिशब्दो हि "मां भक्त्या" दौ तु जैमिनिः।

शंका–तृतीयाविभक्त्यन्त शब्द साधनका वाचक होता है। इस लिए शंका होती है कि 'नमस्यन्तश्च मां भक्त्या' इस श्लोकमें भक्ति शब्द का अर्थ हैं मुख्यभक्ति। 'भक्त्या' इस प्रकार कहा हुआ तृतीयान्त भक्तिशब्द मुख्यभक्तिको नमन (वन्दन) रूप गौणी भक्तिका साधन कहता है। यह सर्वथा अनुचित है। क्योंकि गौणी भक्ति तो मुख्यभक्ति का अङ्ग है अर्थात् उपकर्त्री है और मुख्यभक्ति अङ्गिनी है। अङ्ग अपने अंगी का साधन होता है। किन्तु अङ्गी कभी भी अपने अङ्गका साधन नहीं होता है।

समाधान–इस विषयमें लोगोंके अनेक मत हैं। कुछ लोगोंका मत हि कि गौणीभक्तिमें मुख्यभक्तिके योग से फलाधिक्य होता है। अर्थात् मुख्यभक्ति युक्त गौणी भक्तिसे उत्पन्न पराभक्ति अविलम्ब से (बहुत शीघ्र) मोक्षकी प्राप्तिकर्त्री बनती है।

महर्षि जैमिनिका तो इस विषयमें यह मत हैं। कि–'नमस्यन्तश्च मां भक्त्या' इस श्लोकमें भक्ति शब्द मुख्य नहीं है। अर्थात् यहाँ पर भक्ति शब्द मुख्यभक्तिका वाचक नहीं है। किन्तु दृढताके लिये प्रेमयुक्त नव गौणी भक्तियाँ ही यहाँ पर भक्तिपदवाच्य हैं। अर्थात् प्रेमके सम्बन्धसे दृढ हो कर ही गौणी भक्ति मुख्यभक्तिको उत्पन्न कर सकती है। इसलिये यहाँ पर शंकाको अवकाश नहीं

दाढर्याय प्रेमप्रयुक्ता हि तद्वाच्याः श्रवणादयः ॥११॥
यथासम्भवमङ्गानां यथाकालमनुष्ठितिः ।
भक्तेर्भक्तजनैर्बोध्या गृहोपकरणं यथा ॥१२॥
एकोऽपि बलवांश्चैषूपायेषु श्रवणादिषु ।
यदि तेन प्रसन्नः स्याच्छ्रीरामः सकलेश्वरः ॥१३॥

है। क्योंकि यहाँ पर भक्तिशब्दवाच्य मुख्यभक्ति नहीं है किन्तु प्रेमपूर्वक गौणीभक्ति ही यहाँ पर भक्तिशब्दवाच्य है ॥१०॥११॥

शंका— अब शंका यह होती है कि—मुख्यभक्तिके अङ्गरूप गौणीभक्तिके नव भेदोंको एकसाथ ही करना चाहिये अथवा पृथक् पृथक् ?

समाधान— उक्त शंकाका समाधान किया जाता है कि— जैसे गृह बनानेकी सामग्रियाँ एक साथ ही नहीं लाई जाती हैं किन्तु जिस समय में जिस सामग्रीका सम्भव होता है उस समय में वह सामग्री लाई जाती हैं। उसी प्रकार मुख्यभक्तिके श्रवण कीर्त्तन तथा स्मरण इत्यादि नव अंगों मे से जिसकालमें जिस अंगका सम्भव होता हो भक्त जनोंको उसकाल में उसका अनुष्ठान करना चाहिए नव अङ्गोके एकसाथमें ही अनुष्ठान करने का कोई विधान नहीं है ॥१२॥

शंका— अब शंका यह होती है कि मुख्यभक्तिके उत्पन्न करनेमें इनमेंसे प्रधान कौन है ? इन नवोंमेंसे कोई एक अथवा नवो मिलकर प्रधान हैं ?

समाधान— उक्त शंकाका समाधान यह है कि—श्रवण कीर्त्तन इत्यादि नव साधनोंमेंसे मुख्यभक्ति उत्पन्न करनेमें प्रधान साधन वह है जिससे सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम प्रसन्न हो जायँ ॥१३॥

भक्तौ तु श्रवणाख्यायां विश्रुतौ जानकीसुतौ ।
आदिकविश्च वाल्मीकिः कीर्त्तनभक्तः प्रकीर्त्तितः ॥१४॥
स्मरणेऽगस्त्यशिष्यश्च भरतः पादसेवने ।
अर्चने कुम्भजः ख्यातो वन्दने तु चतुर्मुखः ॥१५॥
दासस्तु मारुतिः प्रोक्तः सुग्रीवः सुसखा स्मृतः ।
आत्मसमर्पको भक्तस्त्यक्त्वबन्धुर्विभीषणः ॥१६॥

अब यह कहा जाता है कि श्रवण कीर्त्तन इत्यादि नवधा भक्ति करनेमें प्रसिद्ध कौन कौन हैं ?

भगवान् श्रीराम जी की 'श्रवण' भक्ति करनेमें प्रसिद्ध हैं जगज्जननी श्रीजानकी जी के सुपुत्र श्री लव और कुश । तथा 'कीर्त्तन भक्ति' के कर्त्ता रूपसे आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकि जी कहे गये हैं ॥१४॥

स्मरणभक्ति करनेमें प्रसिद्ध महर्षि श्रीअगस्त्य जी के शिष्य श्री सुतीक्ष्णजी हैं और पादसेवनभक्ति करनेमें प्रसिद्ध भगवत्प्रेमके समुद्र श्री भरत जी महाराज हैं। अर्चनभक्ति करने में प्रसिद्ध अगस्त्यसंहिताकार महर्षि श्री अगस्त्य जी हैं। तथा वन्दनभक्ति करनेमें प्रसिद्ध श्रीब्रह्मा जी हैं ॥१५॥

दास्यभक्ति करनेमें प्रसिद्ध 'दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य' कहनेवाले पवनकुमार श्रीहनुमान् जी हैं और सख्यभक्ति करनेमें प्रसिद्ध श्रीसुग्रीव जी हैं। आत्मसमर्पक अर्थात् आत्मनिवेदन भक्ति करनेमें प्रसिद्ध बन्धुपरित्याग करनेवाले श्रीविभीषण जी प्रसिद्ध हैं ॥१६॥

भगवतेऽर्पणं चापि कर्मणां भक्तिरुच्यते ।
विशेषः श्रवणादिभ्यश्चार्पणे यः स उच्यते ॥१७॥

कर्मोंका श्रीरामसमपर्ण भी भक्ति है ।

"यत्करोषि यदश्नासि यञ्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदपणम् ॥" (गी. ९।२७) (भगवान्‌ने कहा है कि हे अर्जुन ! तुम शरीरमात्रा के निर्वाहके लिये जो कुछ लौकिक कर्म करो, जो खाओ, जो वैदिक कर्म करो, जो दान दो और जो तप करो वह मुझको समर्पण करो ।) इस प्रकार भगवत्कथनानुसार जो कर्मसमर्पण है वह भी भक्तिरूपसे कथित है ।

शंका—यहाँ पर शंका होती है कि—'श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः इत्यादि प्रकारसे परिगणित भगवान् की नव प्रकारकी भक्तियोंमें कर्म-समर्पण परिगणित नहीं है। इस लिये कर्मसमर्पणको भक्ति कैसे माना जाय ?

उत्तर—इस शंकाका उत्तर यह है कि—श्रवण कीर्त्तन इत्यादि नव प्रकार की भक्तियोंमें 'आत्मनिवेदन' भक्ति परिगणित है। आत्म-निवेदनका अर्थ है आत्मसमर्पण । यहाँ पर आत्मसमर्पणके आत्म-शब्दका अर्थ है आत्मा और आत्मीय अर्थात् आत्मा और आत्मीय (आत्मसम्बन्धी धन जन कर्म इत्यादि सर्व पदार्थ) के समर्पणको आत्म-समर्पण भक्ति कहते हैं। इसलिये आत्माके कर्मका समर्पण भी आत्म-निवेदन भक्तिरूप है। इसलिये यहाँ पर शंकाका कोई अवसर ही नहीं है ।

फलोत्पादनशक्तिर्हि कर्मणां वर्त्तते च या।
तदुत्पत्तिविनाशं तद् रामार्पणं करोति हि ॥१८॥
उत्पन्नशक्तिकानां च कर्मणां श्रवणादिभिः।
संविनाशो भवत्येष विशेषो बुधसम्मतः ॥१९॥

कर्मसमर्पणकी विशेषता

अब 'इस कर्मसमर्पणमें तथा श्रवण कीर्त्तन आदि भक्तियोंमें विशेषता क्या है' यह बात कही जाती है॥१७॥

कर्मोंको भगवान् श्रीरामके समर्पित कर देनेसे कर्मोंकी फलोत्पादन शक्तिकी उत्पत्तिका विनाश हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि—जब तक कर्मोंमें फलोत्पादनशक्ति रहती है तब तक पुण्यकर्म भी मोक्षके प्रतिबन्धक ही रहते हैं। इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको कर्मोंकी फलोत्पादनशक्ति की उत्पत्तिका नाश अवश्य करना चाहिए। कर्मोंकी फलोत्पादनशक्तिकी उत्पत्तिका नाश कर्मोंको श्रीरामार्पित कर देनेसे हो जाता है। इसीलिये गीतामें कर्मोंको भगवत्समर्पित करने के लिये कहा गया है। कर्मोंका श्रीरामार्पण करना भी 'आत्मनिवेदन' भक्ति है ॥१८॥

जिन कर्मोंमें फलोत्पादनशक्ति उत्पन्न हो गई है उन कर्मोंका विनाश श्रवण कीर्त्तन आदि भक्तियोंसे होता है। कर्मसमर्पणभक्ति और श्रवणकीर्त्तन इत्यादि भक्तियोंकी इस प्रकारकी विशेषताको बुद्धिमान् लोग मानते हैं ॥१९॥

अङ्गानि श्रवणादीनि भक्तिदार्ढ्यकराणि हि ।
श्रुतिश्रुतमथ ध्यानं किमर्थं तन्निगद्यते ॥२०॥
"क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।"
इतीशदर्शनं प्रोक्तं कर्मबन्धप्रणाशकम् ॥२१॥
अभ्यासद्वारकं ध्यानं यदि स्यात् प्रेमपूर्वकम् ।

ध्यानका प्रयोजन

भक्तिके श्रवण कीर्त्तन आदि अंग भक्तिको दृढ़ करनेवाले हैं। यह बात कह दी गई। अब 'आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इस श्रुतिमें निदिध्यासनरूपसे कहे हुए 'ध्यान' का प्रयोजन कहा जाता है ॥२०॥

'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥' (मुण्डक २।२।८) (अर्थ—उस परावरशरीरक परमात्माके दर्शन होने पर इस मुमुक्षु पुरुषके कर्म अर्थात् प्रारब्धेतर कर्म नष्ट हो जाते हैं।) इस प्रकारसे श्रुतिमें परमात्माके दर्शनको कर्मबन्धका नाश करनेवाला कहा है ॥२१॥

उक्त श्रुतिमें कथित भगवद्दर्शन अर्थात् भगवत्साक्षात्कार ध्यानकी ही अवस्थाविशेष है। अभ्यास करते करते यदि ध्यान प्रेमपूर्वक हो जाता है। तो वह (प्रेमपूर्वकध्यान) दर्शनका अर्थात् भगवत्साक्षात्कारका साधन बन जाता है। विद्वान्लोगोंने उस प्रेमपूर्वक ध्यानको भक्तिका मुख्य अङ्ग माना है।

यह ध्यानमें रखने योग्य है कि प्रेमपूर्वकध्यानसे ही भगवत्साक्षात्कार होता है, प्रेमरहित कर्कश ध्यानसे नहीं।

योगीलोग प्राणायामादि द्वारा ध्यानको सिद्ध करते हैं। किन्तु

दर्शनसाधनं मुख्यं भक्त्यङ्गं तद् बुधैर्मतम् ॥२२॥

नवसु पञ्चमं चाङ्गमर्चनं परिकीर्त्तितम् ।

भगवत्प्रेमी लोग भगवान् के कथाश्रवण तथा कीर्त्तनादि द्वारा ही भगवान् के प्रेमपूर्वक ध्यानको सिद्ध करते हैं ॥२२॥

अर्चननिरूपण

मुख्यभक्तिके श्रवण कीर्त्तन इत्यादि नव अङ्गोंमें पञ्चम अङ्ग 'अर्चन' कहा गया है । अर्चनके दो भेद हैं—बाह्य अर्चन और आभ्यान्तर अर्चन ॥२३॥

भक्त लोग आभ्यन्तर अर्चनको ही 'ध्यान' कहते हैं । बाह्य अर्चन तो शास्त्रमें षोडश (सोलह) प्रकारका प्रसिद्ध है । पूजाके षोडश उपचार 'श्रीवैणष्वमताब्जभास्कर' में नीचे लिखे प्रकारसे कहे गये हैं—

"आवाहनासनाभ्यां च पाद्यार्घ्याचमनैस्तथा ।
स्नानवस्त्रोपवीतैश्च गन्धपुष्पसुधूपकैः ॥
दीपनैवेद्यताम्बूलप्रदक्षिणविसर्जनैः ।
षोडशार्चाप्रकारैस्तमेतैरर्चेत् सदा सुधीः ॥"

(श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर)

अर्थ—आनन्दभाष्यकार जद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी कहते हैं कि विद्वान् पुरुष १ आवाहन, २ आसन, ३ पाद्य, ४ अर्घ्य, ५ आचमन, ६ स्नान, ७ वस्त्र, ८ यज्ञोपवीत, ९ गन्ध, १० पुष्प, ११ धूप, १२ दीप, १३ नैवेद्य, १४ ताम्बूल, १५ प्रदक्षिणा, १६ विसर्जन नामक षोडशोपचारोंसे श्रीरामजीका अर्चन करे ।

तदनुसार ही 'श्रीरामानन्दपीठ' नामक श्रीटीलाद्वारपीठाचार्य

बाह्याभ्यन्तरभेदेन भिद्यते हि द्विधा च तत् ॥२३॥
भक्तैराभ्यन्तरं तद्धि ध्यानत्वेन समीरितम् ।

जगद्गुरु श्रीमङ्गलाचार्यजी महामुनीन्द्रने (शिक्षारत्नमाला में) कहा है कि—

आवाहन करि प्रेमी प्रेमसे श्रीरामको दे
अर्घ्य पाद्य आचमन स्नानको करावते
तुलसी चन्दन पट भूषण औ गन्धपुष्प
भोगको निवेदि धूपि आरती उतारते ।
विनय सुनाय करि दण्डवत् पांय परि
पानको खवाय सुखशय्यामें सुलावते
मङ्गल कहत रामनाम यश गाय सुनि
मङ्गल–निधान राम–धाम दिव्य पावते ॥९४॥

'बृहत्पाराशरसंहिता' नामक ग्रन्थमें षोडशोपचारपूजामन्त्ररूपसे पुरुषसूक्तके षोडशमन्त्रों की ओर संकेत किया गया है—

"आद्ययाऽऽवाहयेद् देवमृचा तु पुरुषोत्तमम् ।
द्वितीययाऽऽसनं दद्यात् पाद्यं चैव तृतीयया ॥
अर्घ्यश्चतुर्थ्यां दातव्यः पञ्चम्याऽऽचमनं तथा ।
षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या धौतवस्त्रकम् ॥
यज्ञोपवीतं चाष्टम्या नवम्या गन्धमेव च ।
पुष्पं दद्यं दशम्या तु एकादश्या तु धूपकम् ॥
द्वादश्या दीपकं दद्यात् त्रयोदश्या निवेदनम् ।
चतुर्दश्या नमस्कारं पञ्चदश्या प्रदक्षिणः ॥
षोडश्योद्वासनं कुर्याच्छेषकर्माणि पूर्ववत् ।
तच्च सर्वं जपेद् भूयः पौरुषं सूक्तमेव च ॥"

प्रसिद्धमर्चनं बाह्यं शास्त्रे षोडशधा पुनः ॥२४॥
लोकोत्तरमहिम्ना च विशिष्टं पाद्यमेव हि ।

श्रीरामानन्दसम्प्रदायमें 'पुरुषसूक्त' 'श्रीरामार्चनमाहात्म्य' तथा अगस्त्यसंहिता ग्रन्थके अनुसार तथा काशी पञ्चगंगाघाटस्थित श्रीरामानन्दमठके भगवत्पादश्रीरामानन्दाचार्यसिंहासनासीन आचार्यसार्वभौम भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी यतीन्द्रके प्रथमशिष्य जगद्गुरु श्रीअनन्तानन्दाचार्य कृत श्रीरामपटल तथा श्रीरामपद्धतिके अनुसार श्रीरामजीकी पूजा करनेका अधिक प्रचार है। जगद्गुरुश्रीमङ्गलाचार्य विरचित शिक्षाभागीरथीके प्रथमप्रवाह पञ्चमतरंगमें भी श्रीरामजी की पूजाके षोडशोपचारकी विधि बहुत उत्तम रीतिसे वर्णित है ॥२४॥

"पादोदकेन देवस्य हत्यायुतसमन्वितः। शुध्यते नात्र सन्देहस्तथा शङ्खोदकेन हि ॥" (स्कन्दपुराण) (अर्थ– दश हजार हत्याओंसे युक्त पुरुष भी भगवान्के चरणोदकसे तथा शंखोदकसे शुद्ध हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है।) इत्यादि प्रकारसे स्कन्दपुराणादि ग्रन्थोंमें कहे हुए लोकोत्तर (अलौकिक) माहात्म्यसे विशिष्ट (युक्त) पाद्य (भगवान्के पादप्रक्षलनार्थ दिया हुआ जल) ही पादोदक (भगवच्चरणोदक) जानना चाहिए। यदि पाद्यको जल न मानकर भगवान्के साक्षात् चरणोंके प्रक्षालनके जलको चरणोदक माना जायगा तो अव्याप्ति होगी। तात्पर्य यह है कि इस लोकमें साक्षात् भगवान्के चरणोंका मिलना असम्भवित है। यद्यपि अवतारके समयमें भगच्चरणोंके प्रक्षा-

पादोदकतया बोध्यमव्याप्तिरन्यथा भवेत् ॥२५॥
श्रीरामायार्पितं चान्नं पार्षदेभ्यः प्रादाय हि ।

लनका उदक मिल सकता है तो भी वह देशान्तर और कालान्तरमें हुए लोगोंके लिए तो असम्भवित ही है। इसलिए पाद्य जल अर्थात् पूजामें भगवत्पादप्रक्षालनार्थ प्रदत्त जलको ही पादोदक मानना चाहिए ॥२५॥

भगवदर्पितान्नादिभक्षणविचार

ऊपर कहे हुए पूजाके षोडश उपचारोंमें भगवान्को नैवेद्य अर्पण करना भी एक उपचार कहा गया है। उस उपचारमें भगवन्निवेदित अन्नके विषयमें संशय होता है कि भगवन्निवेदित अन्नादिको अर्चक ग्रहण करे कि न करे ? अथवा इच्छा हो तो ग्रहण करे इच्छा न हो तो न ग्रहण करे ? अर्थात् यहाँ पर तीन पक्ष हैं---प्रथम पक्ष है अर्चक भगन्निवेदित अन्नादिका ग्रहण करे, द्वितीय पक्ष है अर्चक भगन्निवेदित अन्नादिका ग्रहण न करे और तृतीया पक्ष है कि यदि रुचि हो तो ग्रहण करे रुचि न हो तो ग्रहण न करे।

इन तीनों पक्षोंमें सिद्धान्तपक्ष है कि अर्चक भगवन्निवेदित अन्नादिको ग्रहण करे अर्थात् खावे।

प्रथमपूर्वपक्ष—द्वितीय पक्षवाले तो कहते हैं कि अर्चकको भगवन्निवेदित अन्नादि न ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि दान दी हुई वस्तुको स्वयं ग्रहण करना दाता के लिये अनुचित है। दान दी हुई गायको ग्रहण कर दान दे देने पर भी राजा नृगकी दुर्दशा अर्थात् सरटयोनि (गिरगिटकी योनि) की प्राप्ति पुराण प्रसिद्ध है ही।

गृह्णीयात् तत् स्वयं चापि वैष्णवत्वाविशेषत: ॥२६॥

समाधान–उक्त पूर्वपक्षके समाधान में कहा जाता है कि–"वैष्णवं सात्वतेभ्य:" (विष्णुनिवेदित अन्नादि सात्वतोंको अर्थात् वैष्णवोंको देना चाहिए।) इस श्रुतिके कथनानुसार भगवान् श्रीराम जीको अर्पित किया हुआ अन्न भगवान्‌की दासता ही जिनका मुख्य स्वरूप है उन भगवत्पार्षद श्री हनुमान् जी इत्यादिको देकर अर्चकको स्वयं भी ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि उक्तश्रुतिकथनानुसार वैष्णव होनेसे अर्चक स्वयं भी भगवन्निवेदित अन्नका अधिकारी है।

ब्राह्मणादिको दान किये हुए पदार्थोंके ग्रहणको कोई भी शास्त्र विधान नहीं करता है। इस लिये राजा नृगकी दुर्दशाकी बात यहाँ पर समन्वित नहीं होती है। यहाँ पर तो भगद्दासतैकस्वरूप वैष्णवको विष्णुनिवेदित अन्नादिके ग्रहण करनेका श्रुति विधान करती है कि "वैष्णवं सात्वतेभ्य:।"

अन्य श्रुतिभी कहती है कि–"विष्णुनाऽशितमश्नन्ति विष्णुना घ्रातं जिघ्रन्ति विष्णुना पीतं पिबन्ति विष्णुना रसितं रसयन्ति तस्माद्‌ विप्रासो विष्णुभक्षितं भक्षयेयु:।" सभी देव विष्णुके भोजन किए हुएको खाते हैं, विष्णुके सूंघे हुए को सूंघते हैं, विष्णुके पिए हुए को पीते हैं और विष्णुके आस्वदितका स्वाद लेते हैं अत: विष्णुभुक्त अन्नादि भक्तोंको खाना चाहिए।

अन्यत्र भी कहा है कि– 'विष्णोर्निवेदितं चान्नं योऽश्नाति भुवि मानव:। स याति परमं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥" (अर्थ–पृथिवी पर जो मनुष्य विष्णुनिवेदित अन्न को खाता है वह पुनरावृत्तिवर्जित

पूजा हि भगवद्यागस्तद् यागत्वाविशेषतः ।
अर्पितान्नं समश्नीयात् पुरोडाशं यथा तथा । २७॥

स्थान को प्राप्त हो जाता है । अर्थात् मुक्त हो जाता है ।)

इसलिये विष्णुनिवेदित अर्थात् भगवत्प्रसादरूप अन्नादिको ग्रहण करनेवाले पुरुषके प्रति राजा नृगकी दुर्दशाकी बात घटित नहीं हो सकती है । क्योंकि उक्त श्रुतिस्मृतिवचनानुसार विष्णुनिवेदितान्न को खानेवाले भक्तकी तो मुक्ति हो जाती है ॥२६॥

द्वितीय पूर्वपक्ष– द्वितीय पूर्वपक्ष ऐसा है । अर्थात् उक्त तीन प्रकारके पक्षोंमें से तृतीय पक्षवाले कहते हैं कि– भोजन करना रुचि के ऊपर निर्भर है । यदि रुचि हो तो भगवत्प्रसाद को खाय न रुचि हो तो न खाय ।

समाधान– इस द्वितीय पूर्वपक्ष वालोंके समाधानके लिये कहा जाता है कि– "यजमानपञ्चमाः पुरोडाशं भक्षयन्ति" यह श्रुति यजमान के पुरोडाश-भक्षणका विधान करती है । इसलिये रुचि न होने पर भी यजमान को यज्ञमें पुरोडाशभक्षण करना पड़ता है ।

भगवत्पूजा भी याग है । जैसे अन्य यागोंमें यजमानको भी पुरोडाशका भक्षण करना पड़ता है । वैसे ही याग होने से इसपूजारूप भगवत्यागमें रुचि न होने पर भी अर्चकको पुरोडाशस्थानीय भगवन्निवेदित अन्नादिको अधिक या न्यून प्रमाणमें खाना ही चाहिए ॥२७॥

अपराधवर्जन विषयक विचार

१—निषिद्ध पुष्पोंसे भगवान्की पूजा करना । २—वाहनपर चढ़ कर अथवा पादुका पहन कर मन्दिरमें जाना । ६— उच्छिष्ट मुख

द्वात्रिंशदपराधाश्च पूजायां सम्भवन्ति हि ।
तेषां विवर्जनं यत् तत् पूजाङ्गमेव किं मतम् ? ॥२८॥
अथवा पुरुषार्थं च तत् पुरुषार्थमेव वा ? ।
अत्रोच्यते निमित्तानां स्वभावं हि व्यपेक्ष्य तत् ॥२९॥
पूजाङ्गं पुरुषार्थं वा यद्वैतदुभयात्मकम् ।
भवतीति मतं भव्यं भक्तितत्त्वावबोधिनाम् ॥३०॥

तथा हस्त वाला अथवा अशुद्ध शरीर वाला होकर भगवान् को स्पर्श करना इत्यादि बत्तीस अपराध भगवत्पूजामें वर्जित हैं । यहां पर संशय होता है कि उक्तअपराधों का वर्जन पूजाङ्ग है? कि पूजाङ्ग और पुरुषार्थ दोनों है? अथवा पुरुषार्थ मात्र है ?

इस संशयके निवारणके लिये कहा जाता है कि—अपराधोंके निमित्तोंके स्वभाव की अपेक्षासे अर्थात् अपराधनिमित्तोंके स्वभावानुसार अपराधवर्जन पूजाङ्गरूप, पुरुषार्थरूप तथा पूजाङ्ग और पुरुषार्थ उभय रूप होता है, यह भक्तिके तत्ववेत्ताओंका उत्तम मत है ।

उक्त कथन को उदाहरण देकर समझाया जाता है—

'निषिद्ध पुष्पोंसे भगवत्पूजा करना' भगवत्पूजा में एक अपराध है । इसलिये इस अपराध का निमित्त है 'निषिद्धपुष्पोपकरणप्रसङ्ग' । इस निमित्तका स्वभाव है 'पूजामें वैकल्य (वैगुण्य) करदेना' । इस लिये उक्त अपराधका वर्जन 'पूजाङ्ग' मात्र है । यदि उक्त अपराधके उक्त निमित्तका स्वभाव 'पुरुषमें प्रत्यवायोत्पादकत्व' अर्थात् पुरुषके पापका जनकत्व भी होता तो इस अपराधके वर्जनमें पुरुषार्थरूपत्व भी होता । किन्तु उक्त निमित्तका स्वभाव पुरुषप्रत्यवायोत्पादकत्वरूप

गौण्यस्तु भक्तयः श्रेष्ठाः सर्वाश्च श्रवणादयः।
यस्मात् सुकृतजास्ताश्च परभक्तेश्च हेतवः ॥३१॥

नहीं है। इस लिये उक्त अपराधवर्जन 'पूजाङ्ग-रूप' ही है पुरुषार्थरूप भी नहीं है।

इसी प्रकार 'वाहन पर आरूढ होकर अथवा पादुका धारणकर भगवन्मन्दिरमें जाना' भी भगवत्पूजामें अपराध माना गया है। इस अपराधका वर्जन भी पूजामें किया जाता है। वाहनपादुका द्वारा भगवन्मन्दिरमें गमनरूप अपराध पूजाङ्गसे असम्बद्ध है। अतः इसका वर्जन पूजाङ्गरूप नहीं है। किन्तु पुरुषके प्रत्यवाय (पाप) का जनक होनेसे पुरुषार्थरूपमात्र है।

इसी प्रकार 'उच्छिष्टमुखादिवाला होकर अथवा अशुद्ध शरीरसे भगवान्का स्पर्श करना' भी भगवत्पूजाका अपराध है। अतः पूजामें इसका भी वर्जन किया गया है। यह अपराध पूजाके अङ्गरूप शौचका लोप करके पूजामें वैगुण्य कर देता है। तथैव इस अपराध द्वारा भगवान् की अवहेलना करनेसे पुरुष प्रत्यवायवाला भी बनता है। अतः इस अपराधका वर्जन पूजाङ्ग और पुरुषार्थ उभयरूप है। इसी प्रकार अन्य अपराधोंके वर्जनोंमें भी समझना चाहिए। विस्तारभयसे यहाँ दिग्दर्शनमात्र किया गया है। ॥२८॥२९॥३०॥

श्रवण कीर्त्तन इत्यादि सभी गौणी भक्तियाँ श्रेष्ठ हैं। इसका कारण यह है कि वे सभी सुकृतसे उत्पन्न हुई हैं तथा परभक्तिकी हेतुरूप हैं अर्थात् पर भक्तिकी साधनरूप हैं ॥३१॥

'चतुर्विधा भजन्ते मा'मित्येवं समतोक्तितः ।
गौणपरविभागो हि भक्तेः कथं ? तदुच्यते ॥३२॥

भक्तिके गौण तथा पर विभागका हेतु

शंका–"चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ! आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।" (गी. ७।१६) (अर्थ–भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन चार प्रकारके सुकृतशाली लोग मुझे भजते है। हे भारतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! वे मेरे भक्त हैं–आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी ।) आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी तथा ज्ञानी इन चारों भक्तोंके विषयमें समानताका निर्देश करते हुए कहा है कि "चारो प्रकारके सुकृतशाली पुरुष मेरा भजन करते हैं ।" इस लिये शंका होती है कि–'जब भगवान्ने स्वयं उक्त चार प्रकारके भक्तोंको समानरूपसे कहा है तो फिर उक्त भक्तोंकी भक्तियोंमे गौण और पर विभाग कैसे किया जा सकता है ?

शंका करनेवालेका तात्पर्य यह है कि––उक्त चारों भक्तोंको समान कहना और उनकी भक्तियोंको पर और गौण अर्थात् मुख्य और अमुख्य भक्तिरूपसे विभागकरना विकल्पको सहन नहीं कर सकता है । वह इस प्रकार––

ज्ञानी भक्तकी भक्ति परा (मुख्य) है कि नहीं ? यदि प्रथम पक्ष स्वीकार करें अर्थात् यह कहें कि 'ज्ञानीकी भक्ति परा भक्ति है' । तो ज्ञानीभक्तके समानरूपसे निर्दिष्ट आर्त्तादि तीनों भक्तोंकी भक्ति भी परा भक्ति ही है । क्योंकि भगवान्ने उक्त तीनों भक्तोंको ज्ञानी भक्तके समान ही भजन करनेवाला कहा है । इस लिये आर्त्तादि

रामभेव परं प्राप्यं ज्ञानी हि मन्यते सदा ।
मुख्यभक्ततया ज्ञानी तस्मादेव मतो बुधैः ३३॥
आर्त्तादयस्त्रयो रामं भजन्त्यन्यफलाय हि ।

तीन भक्तोंकी भक्तियोंको गौण (अमुख्य) भक्ति नहीं कह सकते हैं। इस लिये भक्तिका पर और गौण विभाग करना अनुचित है। इस लिये प्रथम पक्षको स्वीकार नहीं कर सकते हैं।

'ज्ञानी भक्तकी भक्ति परा अर्थात् मुख्या भक्ति नहीं है।' इस दूसरे पक्षका स्वीकार भी नहीं कर सकते हैं। क्योंकि यदि ज्ञानी भक्तकी भक्ति परा भक्ति नहीं है तो किसकी भक्ति परा भक्ति है? भगवान्ने तो उक्त चारप्रकारके भक्तोंसे अतिरिक्त किसी भी भक्तको नहीं कहा है। इस लिये दूसरे पक्षका भी स्वीकार नहीं कर सकते हैं। इस लिये भक्ति का पर और गौणरूपसे विभाग नहीं किया जा सकता है।

इस लिये यहाँ कहा है कि उक्त शंका का समाधान कहा जाता है ॥३२॥

ज्ञानी भक्त सदा परब्रह्म भगवान् श्रीराम जी को ही परं प्राप्य मानता है। अर्थात् ज्ञानी भक्त भगवान् श्रीरामको ही भक्तिका मुख्य फल मानता है। अत एव बुद्धिमानोंने ज्ञानी भक्तको मुख्य भक्त रूपसे माना है। अर्थात् ज्ञानीकी श्रीरामफलक भक्ति ही मुख्य (परा) भक्ति है ॥३३॥

आर्त्त, जिज्ञासु तथा अर्थार्थी ये तीनों भक्त तो भगवान् श्री-रामको अन्य फलके लिये भजते हैं। इस लिये ये तीनों भक्त गौण

भक्तास्त्रयस्ततश्चैते गौणत्वेन प्रकीर्त्तिताः ॥३४॥

ज्ञानिना साहचर्यं तु चैतेषां स्तुतये मतम् ।

त्यक्त्वाऽन्यसाधनं चेशं भजतां युक्तमेव तत् ॥३५॥

भक्त रूपसे कहे गये हैं । अर्थात् इन तीनों भक्तोंकी भक्तियाँ गौण (अमुख्य) हैं । क्योंकि इन तीनों भक्तोंकी भक्तियाँ अन्यफलक हैं । इसीलिये उक्त चारों भक्तोंका मुख्य और गौण रूपसे विभाग करना उचित ही है । तथैव उक्त चारों भक्तोंकी भक्तियोंका मुख्य और गौण रूपसे विभाग करना भी उचित ही है ॥३४॥

ज्ञानी भक्तके साथमें उक्त आर्त्तादि तीन भक्तोंका साहचर्य तो स्तुतिके लिये (प्रशंसा के लिये) है । मुख्य राजाके साथमें अमुख्य मन्त्री इत्यादिकोंकी भी स्तुति होती ही है ।

शंका—वादी शंका करता है कि भगवान् श्रीरामकी प्राप्तिके हेतु ही श्रीरामभक्ति करनेवाले ज्ञानी भक्तकी स्तुति तो करने योग्य है। किन्तु श्रीराम जी से अन्यफलके लिये श्रीरामभक्ति करनेवाले आर्त्तादि तीन भक्तोंकी स्तुति करना तो अनुचित ही है ।

समाधान—अन्यफलके लिये श्रीरामभक्तिसे अतिरिक्त साधनका अवलम्बन करनेवाले आर्त्तादि उक्त तीनों भक्तोंकी स्तुति करना तो अनुचित ही है । किन्तु श्रीरामातिरिक्त फलके लाभके लिये अन्य-साधनोंका परित्यागकर श्रीरामभक्तिमात्रका अवलम्बन करनेवाले उक्त आर्त्तादि तीनों भक्तोंकी प्रशंसा करना तो सर्वथा युक्त ही है॥३५॥

अङ्गित्वमङ्गभूताया ननूपपद्यते कथम् ? ।
इतिचेन्नेष्टिसम्बन्धवद् बहिरन्तरत्वतः ॥३६॥

शङ्का–वादी शंका करता है कि—अङ्गभूत गौणी भक्तिका अङ्गित्व (प्राधान्य) कैसे सिद्ध होगा ? तात्पर्य यह है कि गौणी भक्ति का अङ्गत्व पूर्व कहा गया है। वह उचित ही है। क्योंकि गौणी भक्ति अपना कोई स्वतन्त्र फल नहीं रखती है। किन्तु परभक्तिके फलरूप मोक्षसे ही गौणी भक्तिकी फलवत्ता सिद्ध है।

यहाँ पर आर्त्तादि गौण भक्तोंकी गौणी भक्तिके तो मोक्षातिरिक्त तत् तत् फल हैं। अतः आर्त्तादि भक्तोंकी गौणी भक्तिका अङ्गित्व (प्राधान्य) प्रतीत होता है। वह कैसे उपपन्न होगा। क्योंकि एक ही गौणी भक्तिमें अङ्गत्व और अङ्गित्व दो विरुद्धधर्म कैसे सिद्ध हो सकते हैं ?

समाधान–वादीकी उक्त शंकाका समाधान यह है कि—इष्टि (याग) के सम्बन्धसदृश अंगरूप गौणी भक्तिमें भी बहिष्ट्व (बहिर्भाव) और अन्तरत्व उभयके होनेसे वादीकी शंका निर्मूल है।

तात्पर्य यह है कि—जैसे इष्टि अर्थात् यजनमें इन्द्रादि देवतान्तरके सम्बन्ध होने से स्वर्गादिफलप्रदत्व होनेसे बहिष्ट्व अर्थात् बहिर्भाव होता है। अर्थात् स्वातन्त्र्य (अंगित्व) होता है। तथा उसी इष्टिमें भगवत्सम्बन्ध होनेसे अर्थात् फलाभिप्रायरहित भगवत्प्रीत्यर्थ करनेसे मोक्षसाधन ज्ञानका अङ्गभाव होता है। उसी प्रकार आर्त्तादिभक्तोंकी गौणी भक्तिमें भी स्वाभिलषितफलके सम्बन्धसे अवरोध

अङ्गत्वे च प्रधानत्वे नो विरोध इतश्च यत्।
प्रायश्चित्तत्वमप्यस्ति गौण्याः पापप्रणाशने ॥३७॥
प्रायश्चित्तं तु पापस्य बलिनः प्रबलं मतम्।
विधानादाप्रयाणं तद् दुःशकं सुशकं च हि ॥३८॥

(रुकावट) होनेसे बहिर्भाव (स्वातन्त्र्य–अङ्गित्व) होता है और भगवान्के सम्बन्धसे अवरोध न होनेसे अन्तरत्व अर्थात् मोक्षकी साधनभूत परभक्तिका अङ्गत्व होता है। इस लिये वादीकी शंकाको यहाँ पर अवकाश नहीं है ॥३६॥

"रामस्य कोसलेन्द्रस्य चरितं किल्विषापहम्" (भागवत १२। १२) (अर्थ–कोसलेन्द्र भगवान् श्रीराम जी का चरित पापोंका नाश करने वाला है।) इस प्रकारसे भगवान् श्रीराम जी की स्मरण श्रवण तथा कीर्त्तनादि गौणी भक्ति पापके नाश करनेमें प्रायश्चितरूप है। इसी लिये भी गौणी भक्तिके अङ्गत्व तथा प्रधानत्व (अंगित्व) में कोई विरोध नहीं है। अभिप्राय यह है कि श्रवणादि गौणी–भक्तियोंके एकरूप होने पर भी विनियोगभेदसे उनका पार्थक्य भी हो सकता है। अतः उनके अंगत्व और अंगित्व में कोई विरोध नहीं है ॥३७॥

बलवान् पापोंका प्रायश्चित्त प्रबल ही माना गया है। मरण–पर्यन्त विहित होनेसे प्रायश्चित्त दुःखसाध्य होता है। अतः सुख–साध्य प्रायश्चित्तका भी विधान विकल्पसे किया जाता है। अतः शक्त और अशक्त भेदसे प्रतिपापमें गुरु तथा लघु रूप प्रायश्चितों का विधान किया जाता है। इसलिये भगवान्की श्रवण कीर्त्तनादि

नाशयितुं न शक्नोति यद्धि चान्द्रायणादिकम् ।
क्षणान्नश्यति तत् पापं श्रीरामस्मरणादिना ॥३९॥
सकृदेव प्रपन्नाय श्रीरामं याचते यदि ।
अभयं सर्वभूतेभ्यः श्रीरामः प्रददाति हि ॥४०॥
कृतं स्थाने च साङ्गस्य प्रायश्चित्तस्य मानवैः ।

गौणी भक्तियाँ भी प्रायश्चित्त रूप हैं ही । क्योंकि वे सुखसाध्य हैं। उन्हें अशक्त पुरुष भी कर सकते हैं । इतना अवश्य ध्यान में रखने योग्य है कि उनमें निर्वेद (खेद वैराग्य) आदि भी अपेक्षित होते हैं ॥३८॥

चान्द्रायणादि व्रत जिस पापका नाश नहीं कर सकते हैं, वह पाप श्रीराम जी के स्मरण इत्यादिसे एक क्षणमात्रमें नष्ट हो जाता है ॥३९॥

यदि मनुष्य एक बार भी भगवान् श्रीराम जी से याचना करे कि हे भगवान् श्रीराम जी मैं आपकी शरण को प्राप्त हुआ हूँ। तो भगवान् श्रीरामजी उसको सर्वभूतोंसे अभय देते ही हैं । भगवान् श्रीरामजी ने स्वयं कहा है कि– "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥" (वाल्मी० रा०यु०) (अर्थ–भगवान् श्रीराम जी कहते हैं कि 'एक वार भी प्रपत्ति के लिए जो पुरुष याचना करता है कि हे भगवन् मैं तुम्हारी शरण में हूँ' तो मैं सर्वभूतोंसे उसे अभय देता हूँ। यह मेरी प्रतिज्ञा है।) ॥४०॥

अङ्गसहित प्रायश्चित्तके स्थानमें मनुष्यों द्वारा किए हुए श्रीराम-

अपेक्षते तदङ्गं न श्रीरामस्मरणादिकम् ॥४१॥
भक्तौ सर्वाधिकारश्चास्त्यहिंसादिकधर्मवत् ।
सर्वत्र स्तोऽविशेषेण ह्यर्थिता च समर्थता ॥४२॥
अतो विपक्वभावानां मानवर्षिदिवौकसाम् ।
तत्तल्लोके च दृष्टं हि भक्तेराचरणं शुभम् ॥४३॥

स्मरण इत्यादि प्रायश्चित्तके अङ्गोंकी अपेक्षा नहीं रखते हैं ॥४१॥

भक्तिमें सबका अधिकार है ।

जैसे अहिंसा इत्यादि धर्मोंमें ऊंच नीच सबका अधिकार है, उसी प्रकार भगवान् श्रीरामकी भक्तिमें भी ऊंच नीच सभीका अधिकार है। इसका कारण यह है कि ऊंच नीच सभी मनुष्योंमें अविशेषरूपसे अर्थात् सामान्यरूपसे अर्थिता अर्थात् त्रिविध तापके परिहार (हटाने) की इच्छा और भगवद्भजन करनेका सामर्थ्य दोनों वर्त्तमान हैं ॥४२॥

प्राणीमात्रका श्रीरामभक्तिमें अधिकार है इसी लिये जिनके भाव अर्थात् अन्तःकरण परिपक्व अर्थात् भगवत्प्रेमरसोन्मुखावस्थाको प्राप्त हो गये हैं उन मानव ऋषि और देवताओंके तत् तत् लोकोंमें भक्तिके शुभ आचरण देखे गये हैं। स्कन्दपुराणमें कहा गया है कि—"ब्रह्मा स्थाणुर्मनुर्दक्षो भृगुर्धर्मस्तथा यमः। मरीचिरङ्गिरश्चात्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ वैभ्राजश्च वशिष्ठश्च विवस्वान् सोम एव च। कश्यपः कर्दमाद्याश्च प्रजानां पतयो मुने ! ॥ देवाश्च ऋषयः सर्वे सर्वे वर्णास्तथाश्रमाः। पूजयन्ति तमेवेशं प्रवृत्तं धर्ममास्थिताः ॥" (अर्थ—ब्रह्मा शंकर मनु दक्ष भृगु धर्म तथा यमराज मरीचि अंगिरा अत्रि पुलस्त्य पुलह क्रतु वैभ्राज वशिष्ट विवस्वान् सोम चंद्र कश्यप कर्दमादिक

'तासां मूर्धानमि'त्येवमार्त्तप्रपत्तिशालिनः ।
नाड्या मूर्धन्ययोत्क्रान्तिर्भक्तस्य स्थूलदेहतः ॥४४॥
तावदेव चिरं चैवं त्वरितं मुक्तिभाषणात् ।
ब्रह्मलोकगतिः सद्यः सद्योमुक्तिरुदीरिता ।४५।

प्रजापति तथैव हे मुने ! सर्व देव सर्व ऋषि सर्व वर्ण और सर्व आश्रमके मनुष्य प्रवृत्त धर्मका आश्रय लेकर उन सर्वेश्वर भगवान्‌को पूजते हैं) ॥४३॥

क्रममुक्ति

कठोपनिषत् में कहा है कि—" शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥" (कठोप० २।३।१६) (अर्थ—हृदयकी एकसौ एक प्रधान नाडियाँ हैं । उनमेंसे एक अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी मस्तकमें निकली हुई है । उस नाड़ीसे उपरको अर्थात् ब्रह्मलोकको प्राप्त होकर मुक्तिको प्राप्त होता है । दूसरी सौ नाड़ियाँ जीवके शरीरसे उत्क्रमण करनेके लिये होती हैं ।) इस श्रुतिमें 'तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका तयोर्ध्वमायन्' इस प्रकारसे आर्त्तप्रपत्तिवाले भक्तकी मूर्धन्या सुषुम्ना नाड़ीके द्वारा स्थूलशरीरसे उत्क्रान्ति कही गई है ॥४४॥

श्रुतिमें "तस्य तवादेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये" (उसको उतनी ही देर है जब तक वह शरीरसे नहीं छूटता है, शरीरसे छूटनेके पश्चात् तो वह ब्रह्मको प्राप्त होता ही है । अर्थात् मुक्त हो ही जाता है ।) इसप्रकारसे शीघ्र मुक्तिके कथित होनेसे ही आर्त्तप्रपक्तियुक्त भक्तकी सद्य ब्रह्मलोकगतिरूप सद्योमुक्ति कही गई है ॥४५॥

"अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।"
सर्वकामविमुक्ता हि दशा चात्रेत्युदीरिता।४६।
'न तस्य प्राणा' इत्यत्र प्राणानुत्क्रमणं न हि।
किन्तु प्राणा न तस्माच्च ह्युत्क्रामन्तीति बोधितम् ॥४७॥

कठोपनिषत्में कहा है कि—"अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।" (कठ २।३।१४) (इसके अनन्तर उपासक अमृत हो जाता है और यहीं पर ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।) इस श्रुतिमें उपासककी सर्वकामनाओंसे विमुक्त दशाका ही कथन किया गया है। तात्पर्य यह है कि जब उपासक पुरुषके हृदयमें रहे हुए समस्त काम (मनोरथ) छूट जाते हैं तो वह सर्वकामनारहित भक्त अमृत होता है अर्थात् उत्तर और पूर्वके अघोंके अश्लेष और विनाश वाला हो जाताहै। तब वह अत्र अर्थात् उपासनसमयमें ही ब्रह्मानुभवको प्राप्त हो जाता है ॥४६॥

वृहदारण्यकोपनिषत् में कहा है कि—"अथाकामयमानो योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।" (वृ० ४।४६) अर्थ—जो कामना नहीं करता है वह अकाम (कामनाशून्य) निष्काम (निर्गतकामनावाला) आप्तकाम (प्राप्तकामनावाला) और आत्मकाम (केवल आत्माकी ही कामनावाला) होता है। उस पुरुषसे प्राण उत्क्रमण नहीं करते हैं। वह ब्रह्मसदृश होकर ब्रह्मके संयोग विशेषको प्राप्त होता है। इस श्रुतिमें 'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति' इसरूपसे प्राणके उत्क्रमणका निषेध नहीं किया गया है किन्तु प्राणविशिष्ट आत्मासे प्राणके पृथक

प्राणादिना विशिष्टस्यात्मनोऽर्चिरादिनैव हि ।
क्रमेण ब्रह्मलोके च गतिर्भक्तस्य सम्मता ॥४८॥
अमानवकरस्पर्शादनन्तरं तु मानवः ।
रामानुभवशक्तां हि दिव्यां च लभते तनुम् ॥४९॥

होनेका निषेध ही ज्ञापित किया गया है। इस लिये कोई दोष नहीं हैं ॥४७॥

अतः भक्तके प्राणादिविशिष्ट आत्माका अर्चिरादिक्रमसे ही ब्रह्मलोकमें गति बुद्धिमानों द्वारा मानी गई है। अर्थात् सिद्धान्तमें क्रममुक्ति ही मानी गई है। सद्योमुक्तिका खण्डन ब्रह्मसूत्रके द्वितीय-सूत्रके आनन्दभाष्यमें भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजीने विस्तारसे किया है। अधिक जिज्ञासुओंको वहीं देखना चाहिए ॥४८॥

अमानव करस्पर्शके अनन्तर उपासक मनुष्य श्रीरामानुभवकरनेमें समर्थ दिव्य शरीरको पाता है। जगद्गुरु श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य जी ने श्रीरामप्रातिपद्धतिनामक निबन्धमें कहा है कि—"उल्लंध्य प्रकृतिं सोऽथ विरजामवगाहते। ततः सूक्ष्माच्छरीराद्धि विश्लिष्टश्च भवत्यसौ ॥१९॥ प्रादुर्भवत्यथो चास्यानघत्वादिगुणष्टकम्। अमानवकरस्पर्शो भवत्यस्य ततः परम् ॥२०॥ श्रीरामस्य च संकल्पाद् दिव्यदेहो भवत्यसौ। कालकाल्येतरे दिव्ये देशे प्राप्तो भवत्यसौ ॥२१॥" (अर्थ—वह भक्त पुरुष प्रकृतिमण्डलका उल्लंघन करके श्रीविरजा जी में स्नान करता है। तदनन्तर वह सूक्ष्मशरीरसे वियुक्त होता है ॥१९॥ उसके पश्चात् उसके अपहतपाप्मत्वादि आठ गुण प्रादुर्भूत (प्रकट) होते हैं। तदनन्तर इसको अमानवपुरुषके करका स्पर्श होता है ॥२०॥

जाते त्वत्यन्तनिर्वेदे महापातकिनामपि ।
अधिकारोऽस्ति भक्तौ हि तया पापक्षयः स्मृतः ॥५०॥
शास्त्रेषु चोपदिष्टं हि मोक्षस्य साधनद्वयम् ।
क्वचिदेकान्तधर्मश्चानन्या भक्तिश्च कुत्रचित् ॥५१॥

उसके पश्चात् भगवान श्रीराम जीके संकल्पसे वह भक्त दिव्यदेह-वाला होता है। तदनन्तर वह कालसे कवलित होनेवाले लोकोंसे भिन्न दिव्यदेशको प्राप्त होता है ॥२१॥) ॥४९॥

अत्यन्त निर्वेद अर्थात् खेद होने पर ब्रह्महत्यादि महापातक करनेवाले पुरुषोंका भी भक्तिमें अधिकार है। उस भक्तिसे उनके पापोंका क्षय होना शास्त्रोंमें कहा गया है। भगवान्ने गीतामें नवम अध्यायमें कहा है कि—"अपि चेत् सुदुराचरो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः ॥३०॥ क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति। कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥" (अर्थ—भगवान् कहते हैं कि अत्यन्त दुराचारी पुरुष भी यदि अनन्यभावसे मेरा भजन करे तो उसे साधु पुरुष मानना चाहिये क्योंकि वह मेरे भजनरूप सम्यग् व्यवसायवाला है ॥३०॥ वह शीघ्रही धर्मात्मा हो जाता है और शाश्वती शान्तिको प्राप्त होता है। हे कौन्तेय! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरे भक्तका नाश नहीं होता है ॥३१॥) ॥५०॥

शास्त्रोंमें मोक्षके दो साधनोंका उपदेश किया गया है। कहीं पर एकान्तधर्म (अनन्यधर्म) और कहीं पर अनन्यभक्ति ॥१५॥

तयोरैक्यमनैक्यं वा ? किं युक्तमैक्यमेव हि ।
प्रत्यभिज्ञा यतस्तत्र गीतार्थस्य च विद्यते ॥५२॥
परां भक्तिं च कृत्वैव रामं प्राप्नोति मानवः ।
'भक्त्या त्वनन्यये'त्यादि श्रीमद्भगवदुक्तितः ॥५३॥

इत्युपनिषद्भाष्यकार पण्डितसम्राट् स्वामिश्रीवैष्णवाचार्य-
वेदान्तपीठाचार्यप्रणीते भक्तिवादे चतुर्थः परिच्छेदः॥४॥

इसलिये शंका होती है कि वे दोनों एक हैं ? अथवा भिन्न भिन्न हैं ? क्या उचित है ? उत्तर दिया जाता है कि दोनोंका ऐक्य ही है। क्योंकि दोनों के एक होनेमें गीतार्थकी प्रत्यभिज्ञा (पहिचान) है ॥५२॥

"भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन । ज्ञातुं द्रष्टुञ्च तत्त्वेन प्रवेष्टुञ्च परन्तप ! ॥" (गी० ११।५४) (अर्थ पूर्वमें कर दिया गया है) इस प्रकारकी भगवदुक्तिसे सिद्ध होता है कि मनुष्य परभक्तिको करके ही भगवान् श्रीराम जी को प्राप्त होता है। अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है ॥५३॥

इत्युपनिषद्भाष्यकारपण्डितसम्राट्स्वामिश्रीवैष्णवाचार्य
वेदान्तपीठाचार्यप्रणीतायां विजयमालाख्यायां
व्याख्यायां चतुर्थः परिच्छेदः ॥४॥

अथ पञ्चमः परिच्छेदः ।

भजनीयमविज्ञाय भजनं मुक्तये न हि ।
भजनीयः परब्रह्म श्रीरामः परिकीर्त्तितः ॥१॥
सर्वज्ञः सर्वपूज्यः स सर्वात्मा सर्वदेश्वरः ।
सर्वभृत् सर्वकृच्चाथ सर्वशेषी च सर्वहृत् ॥२॥
सर्वबन्धुः सुहृच्चाथ सर्वेषां हितकारकः ।
दिव्यधामाधिपश्चाथ दिव्यदेहो गुणाम्बुधिः ॥३॥

"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" (उन सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामको जानकर ही प्राणी मोक्षको प्राप्त होता है। मुक्तिके लिये दूसरा मार्ग है ही नहीं।) इत्यादि श्रुतिवचनोंसे विदित होता है कि भजनीय तत्त्व (भगवान् श्रीराम) के ज्ञानके बिना भजन करने से मुक्ति नहीं मिलती है किन्तु परमभजनीय भगवान् श्रीराम जी को यथार्थरूपसे जानकर भजन करनेसे ही मुक्ति मिलती है । परब्रह्म भगवान् श्रीराम ही शास्त्रोंमें भजनीयरूपसे कहे गये हैं ॥१॥

सर्वशेषी सर्वज्ञ सर्वपूज्य सर्वात्मा सर्वदाता ईश्वर भगवान् श्रीराम ही सर्वके कर्त्ता भर्त्ता और हर्त्ता हैं ॥२॥

भगवान् श्रीराम सर्वके बन्धु सुहृद् तथा हितकारक हैं । वे दिव्यधाम (नित्यविभूति) के स्वामी दिव्यदेहवाले तथा गुणाके समुद्र हैं ॥३॥

सेवितो नित्यमुक्तैश्च दिव्यभूषणभूषितः ।
दिव्यसिंहासनासीनः श्रीसीतया सुशोभितः ॥४॥
परित्राता श्रितानां च सत्यसन्धो दयानिधिः ।
अवाप्तसर्वकामश्च वेदकृद् वेदबोधितः ॥५॥
धर्मप्रियश्च धर्मात्मा धर्मविद् धर्मपालकः ।
मुक्तिदः परभक्त्या च ब्रह्मादिसुरवन्दितः ॥६॥
जगतोऽस्य निमित्तं चाथोपादानं स एव हि ।
अद्वितीयमिदं तेन श्रीरामेण कुतो यतः ॥७॥

श्रीराम जी श्रीहनुमान् जी इत्यादि नित्यमुक्त जीवों तथा वशिष्ठादि मुक्त जीवोंसे सेवित हैं । वे दिव्य विभूषणोंसे विभूषित दिव्यसिंहनासीन तथा जगज्जननी श्री जानकी जी के साथमें सुशोभित हैं ॥४॥

वे आश्रितजनों के परिपालक सत्यप्रतिज्ञावाले दयाके भण्डार अवाप्तसमस्तकाम वेदकर्त्ता (सृष्ट्यादिमें पूर्वकल्पस्थ आनुपूर्वीवाले वेदके प्रथम वक्ता) और वेदद्वारा ज्ञापित हैं ॥५॥

भगवान् श्रीरामको धर्म बहुत प्रिय है । वे धर्मात्मा धर्मज्ञ और धर्मपालक हैं । वे परभक्तिसे मुक्ति देनेवाले हैं तथा ब्रह्मादि देवोंसे वन्दित है ॥६॥

वे भगवान् श्रीराम जी ही इस जगत्के निमित्तकारण तथा उपादान कारण हैं । विविध कार्यरूप यह जगत् परब्रह्म भगवान् श्रीरामसे अद्वितीय अर्थात् अभिन्न ही है । अर्थात् भिन्न नहीं है । क्योंकि यह समस्त जगत् परब्रह्म श्रीराम स्वरूप ही माना गया है ।

सर्वस्य जगतश्चास्य मता हि तत्स्वरूपता।
सर्वस्य तच्छरीरत्वादपृथक्सिद्धता ततः ॥८॥

तात्पर्य यह है कि जैसे घट शराव (सरवा) इत्यादि मृत्तिकाके विविध विकारोंका स्वरूप मृद्द्रव्य ही होता है। अर्थात् विविध घटादिविकार मृत्तिकास्वरूप ही होते हैं। अर्थात् घटादिविकार मृत्तिकासे भिन्न नहीं होते हैं। उसी प्रकार समस्त चराचर पदार्थ ब्रह्मस्वरूप ही हैं। ब्रह्मसे भिन्न नहीं हैं। क्योंकि 'यस्यात्मा शरीरम्' (आत्मा जिस ईश्वर का शरीर है। ' यस्य पृथिवी शरीरम्' (पृथिवी जिस ईश्वरका शरीर है) 'जगत् सर्वं शरीर ते' (वा. रा. यु. कां) श्रीब्रह्माजी कहते हैं कि "हे भगवान् श्रीराम यह समस्त जगत् आपका शरीर है।" इत्यादि श्रुतियों और स्मृतियोंके प्रमाणसे सर्वपदार्थ भगवान् श्रीराम जीके शरीर हैं। अतः सभी पदार्थ भगवान् श्रीरामजीसे अभिन्न अर्थात् अपृथक्सिद्ध हैं। प्रमिताक्षरावृत्तिकार जगद्गुरु श्रीदेवानन्दाचार्य जी ने भी भगवान् श्रीराम जी को इसी लिए समस्त विश्वस्वरूप कहा है—

"नभश्चानिलस्त्वं त्वमेवानलोऽपि
त्वमम्भः क्षमाम्भोनिधिः क्ष्मा त्वमेव
त्वमन्तर्बहिर्नाथ ? विश्वात्मकं त्वां
श्रये राघवं सच्चिदानन्दरूपम् ॥'

अर्थ—तुम्हीं आकाश हो, तुम्हीं वायु हो, तुम्हीं तेज हो, तुम्हीं जल हो, और क्षमाके समुद्ररूप पृथिवी भी तुम्हीं हो। हे नाथ ? अन्तर और बाहर भी तुम्हीं हो। समस्त विश्वस्वरूप सच्चिदानन्दरूप आप श्रीराघवका मैं आश्रित होता हूँ।'

"तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः" (२।१।१४) इस सूत्रके आनन्दभाष्यमें आचार्यसम्राट् भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जी यतीन्द्रने भी कहा है कि—

"अत्रेदं तत्त्वम्। चिदचिद्वस्तुशरीरतया तत्प्रकारं ब्रह्मैव सर्वदा सर्वशब्दाभिधेयम्। तत् कदाचित् स्वस्मात् स्वशरीरतयाऽपि पृथग्व्यपदेशानर्हसूक्ष्मदशापन्नचिदचिद्वस्तुशरीरम्। तत् कारणावस्थं ब्रह्म। कदाचिच्च विभक्तनामरूपव्यवहारार्हस्थूलदशापन्नचिदचिद्वस्तुशरीरम्। तच्च कार्यावस्थमिति कारणात् परस्माद् ब्रह्मणः कार्यरूपं जगदनन्यत्। शरीरभूतचिदचिद्वस्तुनः शरीरिणो ब्रह्मणश्च कारणावस्थायां कार्यावस्थायाञ्च श्रुतिशतसिद्धया स्वभावव्यवस्थया च गुणदोषव्यवस्था "न तु दृष्टान्तभावात्" (ब्र. सू. २।१।९) इत्यत्रोक्ता बोध्येति सर्वमवदातम्।

ये तु कार्यकारणयोरनन्यत्वं कार्यस्य मिथ्यात्वाश्रयणेन वर्णयन्ति: न तेषां कार्यकारणयोरनन्यत्वं सिध्यति। सत्यमिथ्यार्थयोरैक्यानुपपत्तेः। तथा सति ब्रह्मणो मिथ्यात्वं जगतः सत्यत्वं वा स्यात्। तस्माऽदस्मदुपवर्णितप्रकारेणैवानन्यत्वं जगद्ब्रह्मणोरिति सिद्धम्।" (आनन्दभाष्य २।१।१४)

अर्थ—आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जी कहते हैं। कि—यहाँ पर तत्त्व यह है। चिदचिद्वस्तुशरीरवाला होनेसे चिदचित्प्रकारक ब्रह्म ही सर्वदा सर्वशब्दवाच्य है। वह कभी स्वशरीर होनेसे भी स्वसे पृथक्कथनके अयोग्य सूक्ष्मदशाको प्राप्त चित् और अचित् शरीरवाला होता है। वह कारणब्रह्म है। कभी विभक्त नामरूप

व्यवहार के योग्य स्थूलदशाको प्राप्त चित् और अचित् शरीरवाला होता है। वह कार्यब्रह्म हैं। इस लिए कारणरूप पर ब्रह्मसे कार्यरूप जगत् अनन्य (अभिन्न) है। शरीररूप चित् और अचित् तत्त्वोंकी और शरीरीरूप ब्रह्मकी कारणावस्थामें और कार्यावस्थामें सैकड़ों श्रुतियोंसे सिद्ध स्वभावकी व्यवस्थासे गुणदोषकी व्यवस्था 'न तु दृष्टान्तभवात्' इस सूत्रमें कथित रीतिसे जानना चाहिए। अतः सर्व ठीक है।

जो अद्वैतवादी महानुभाव कार्य और कारणके अनन्यत्व (अभिन्नत्व) को कार्यके मिथ्यात्वको मान कर कहते हैं उनके कार्य और कारणका अनन्यत्व सिद्ध नहीं हो सकता है। इसका कारण यह है 'कि सत्य और मिथ्या' पदार्थोंका ऐक्य सिद्ध नहीं हो सकता है। तात्पर्य यह है कि अद्वैती महानुभाव कारणरूप ब्रह्मको सत्य और कार्यरूप जगत् को मिथ्या मानते हैं। इसलिए सत्य और मिथ्या पदार्थोंकी एकताके असिद्ध होनेसे कार्य और कारणरूप जगत् और ब्रह्म की एकता सिद्ध नहीं हो सकती है। अद्वैतीमहानुभावोंके कथनानुसार यदि कारणरूप ब्रह्म और कार्यरूप जगत्का ऐक्य माना जायगा तो ब्रह्मको मिथ्यात्व प्राप्त होगा या जगत्को सत्यत्व प्राप्त होगा। भगवान् आनन्दभाष्यकार जी कहते हैं कि इसलिए हमारे कहने के अनुसार ही 'जगत् और ब्रह्मका अनन्यत्व है' यह बात सिद्ध हो गई।

अतः चेतनाचेतन रूप समस्त जगत् भगवान् श्रीरामका शरीर होनेसे भगवान् श्रीरामसे अपृथक्सिद्ध ही है। उनसे भिन्न नहीं है ॥७॥८॥

तत्रोपादानता चापि सद्वारिका मता यतः।
विकारो तत्स्वरूपे तन्मन्यते न विवेकिभिः ॥९॥
मायिनो रामचन्द्रस्य शक्तिर्माया प्रकीर्त्तिता।

शंका–ऊपर कहा गया है कि जगत्का उपादानकारण भी ब्रह्म ही है। उसमें शंका होती है कि घटका उपादानकारण मृत्तिका है वह मृत्तिका घटरूपमें विकृत होती है। इसी प्रकार कुंडलका उपादानकारण सुवर्ण भी कुंडलरूपमें विकृत होता है। यदि ब्रह्मको जगत्का उपादानकारण माना जावेगा तो ब्रह्म भी जगत्रूपमें विकृत होगा। तब श्रुतिप्रतिपादित ब्रह्मकी निर्विकारताकी क्षति होगी।

समाधान–उक्त शंकाका समाधान यह है कि–हम ब्रह्मको जगत्का सद्वारक उपादानकारण मानते हैं। अतः विशिष्टब्रह्मके विशेषणांशरूप चित् और अचित्रूप द्वारमें ही विकार होता है। विशेष्यांशरूप ब्रह्ममें विकार नहीं होता है। अतः हमारे सिद्धान्तमें कोई दोष नहीं आता है। यह ध्यानमें रखने योग्य है कि ब्रह्मके स्वरूप और स्वाभाव दोनोंमें विकार नहीं होता है। चित् अर्थात् जीवके स्वरूपमें तो विकार नहीं होता है किन्तु जीवके स्वभावरूप ज्ञानमें संकोच और विकास रूप विकार होते हैं। अचित् तत्त्वके तो स्वरूप और स्वभाव दोनोंमें विकार होता है। इसलिए यहाँ नवम श्लोकमें कहा गया है कि ब्रह्ममें जगत्की उपादानकारणता सद्वारक मानी गई है। अतः विवेकी पुरुष ब्रह्मके स्वरूपमें विकार नहीं मानते हैं किन्तु ब्रह्मके प्रकारांश (विशेषणांश) में ही विकार मानते हैं ॥९॥

"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्" इस श्रुतिके

'देवात्मशक्तिमि'त्यादिश्रुतेस्तत्र प्रमाणता ॥१०॥
विचित्रकार्यकृच्चाथ जडा सा त्रिगुणाश्रयः।
'यस्याव्यक्तं शरीरं' चेतिवाक्यात् सैश्वरी तनुः॥११॥
किञ्चित् कर्त्तु समर्था न जडत्वात् सा रथादिवत्।
ईश्वराधिष्ठिता सा तु जगदुत्पादिका मता ॥१२॥
श्रुत्या ब्रह्मात्मकाः प्रोक्ता व्याप्याश्च वियदादयः।
व्यापकस्तानपेक्ष्याथ श्रीरामः सकलेश्वरः ॥१३॥
आरम्भकं हि मृद्द्रव्यं घटादेर्व्यापकत्वतः।

कथनानुसार मायापति भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की शक्ति माया कही गई है। 'माया श्रीराम जीकी शक्ति है' इस कथनमें प्रमाणहै 'देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्'' यह श्रुति ॥१०॥

माया विचित्रकार्यकरनेवाली जड़ और त्रिगुणात्मिका है। ''यस्याव्यक्तं शरीरम्'' (जिस ईश्वरका शरीर अव्यक्त (माया) है।) इस श्रुतिवचनके प्रमाणमे माया ईश्वरका शरीर है ॥११॥

रथादिके समान जड़ होनेसे माया स्वतः कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है। किन्तु ईश्वरसे अधिष्ठित हो कर वही जड़ माया जगत्की उत्पादिका मानी गई है ॥१२॥

''यस्याकाशं शरीरम्'' (जिस परमात्माका शरीर आकाश है) इस प्रकार श्रुतिद्वारा आकाशादि ब्रह्मात्मक कहे गये हैं। अतः आकाशादि ब्रह्म अर्थात् भगवान श्रीरामकी अपेक्षा व्याप्य हैं। उन आकाशादिकोंकी अपेक्षासे सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम व्यापक हैं ॥१३॥

जैसे व्यापक होनेसे मृद्द्रव्य घटादि व्याप्य पदार्थोंका उत्पादक

आरम्भको तथा रामो वियदादेस्ततो मतः ॥१४॥
प्राणिज्ञानबलादिभ्यो जगत्सृष्ट्याद्यसम्भवः ।
जगद्व्यापारवर्जं यन्मुक्तैश्वर्यं प्रकीर्त्तितम् ॥१५॥
जीवसृष्टं जगच्चेत् तत् स्यात् तदा तद्धितात्मकम् ।
न तथा च ततस्तद्धि जीवसृष्टं कदापि न ॥१६॥
सर्वेशः सर्वशक्तिश्च पितृवत् करुणाम्बुधिः ।
रामः सत्यसङ्कल्पस्तत्तत्कर्मानुसारतः ॥१७॥

हैं वैसे ही व्यापक हानेसे भगवान् श्रीराम जी व्याप्य आकाशादिके उत्पादक हैं ॥१४॥

जीवोंके ज्ञान बल इत्यादिकोंसे जगत्की सृष्टि स्थिति तथा लय करना असम्भवित हैं। क्योंकि मुक्त जीवोंका ऐश्वर्य भी जगद्व्यापारसे रहित कहा गया है अर्थात् मुक्त जीव भी जगत्की सृष्टि नहीं कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि पूर्ण ऐश्वर्यको प्राप्त हुए कर्मबन्धनसे मुक्त मुक्तजीव भी यदि सृष्टि नहीं कर सकते हैं तो अल्पज्ञान तथा अल्पबलवाले कर्मबद्ध जीव जगत्की सृष्टि कैसे कर सकेंगे ? अर्थात् नहीं ही कर सकेंगे ॥१५॥

यदि यह जगत् जीवके द्वारा रचित होता तो जीवरचित गृहादिके तुल्य यह जगत् जीवके लिए हितरूप होता किन्तु यह सर्वजन अनुभूत है कि यह जगत् जीवके लिये हितरूप नहीं है किन्तु अहित-रूप है। अतः यह जगत् कदापि जीवसृष्ट नहीं है ॥१६॥

सर्वेश्वर सर्वशक्ति तथा पिताके सदृश करुणाके सिन्धु सत्यसंकल्पवाले भगवान् श्रीराम जी के द्वारा प्राणियोंके तत् तत् कर्मोंके

शुभाशुभं जगच्चैतद् विनिर्माय विनिर्ममे ।
वेदान् ज्ञापयितुं जीवान् पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥१८॥
मिश्रोपदेशतश्चेशः पितृवन्नेति चेन्न हि ।
अहितस्योपदेशस्य त्वतिस्वल्पत्वहेतुतः ॥१९॥
श्रीराम एव जीवानां धर्माधर्मविधायिनाम् ।
सन्तुष्टो धर्मतश्चाथ रुष्टस्तेषामधर्मतः ॥२०॥
ददाति सकलं तेभ्यः सुखदुःखात्मकं फलम् ।
भूपतिः स्वप्रजाभ्यो हि यथा यच्छति तद्द्वयम् ॥२१॥

अनुसार शुभ तथा अशुभरूप यह जगत् बनाया गया है। तदनन्तर जीवोंको धर्म अर्थ काम तथा मोक्षरूप पुरुषार्थ-चतुष्टयको ज्ञापित करनेके लिए भगवान् श्रीराम जी ने वेदोंको बनाया है ॥१७॥१८॥

शंका—वादी शंका करता है कि वेदोंमें हित और अहित उभय प्रकारके उपदेशोंको करनेवाला ईश्वर पिताके सदृश करुणासिन्धु नहीं है।

समाधान—वेदोंमें हितकर उपदेश बहुत हैं। अहितोपदेश तो अत्यन्त अल्प है। अतः वादीकी शंका उचित नहीं है ॥१९॥

धर्म और अधर्म करनेवाले जीवोंके धर्मसे सन्तुष्ट हुए तथा उनके अधर्मसे रुष्ट हुए भगवान् श्रीरामजी ही उन जीवोंको उनके कर्मोंके फलरूप समस्त सुख और दुःख देते हैं। जैसे राजा अपनी सत्कर्मशालिनी तथा असत्कर्मशालिनी प्रजा को सुख तथा दुःख दोनों देता है ॥२०॥२१॥

सृष्टिक्रमो यथा तस्माद् विपर्ययेण चाप्ययः ।
उपादाने ह्युपेयानां घटादेश्च यथा मृदि ॥२२॥

इत्युपनिषद्भाष्यकारपण्डितसम्राट्स्वामि-
श्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठाचार्यप्रणीते
भक्तिवादे पञ्चमः परिच्छेदः ॥५॥

जैसे घटादि कार्योंका अपने कारण मृत्तिकादिमें लय होता है। उसी प्रकार सृष्टिक्रमके उलटे क्रमसे कार्योंका अपने कारणोंमें लय होता है ॥२२॥

इत्युपनिषद्भाष्यकारपण्डितसम्राट् स्वामिश्रीवैष्णवाचार्यवेदान्त-
पीठाचार्यप्रणीतायां विजयमालायां
पञ्चमः परिच्छेद॥५॥

आनन्दभाष्यकारश्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।



अथ षष्ठः परिच्छेदः ।

ऐक्यं चाथ स्वरूपस्य रामस्य परमात्मनः ।
सङ्कर्षणादिनानात्वं कार्योपाधिनिमित्तकम् ॥१॥
पृथक् स्थितिस्तु जीवानां न रामात् परमात्मनः ।
सुरासुरादिनानात्वमुपाधेर्योगतः खलु ॥२॥

सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम एक ही हैं ।

शङ्का—श्रुतिमें, नारदपञ्चरात्रमें तथा वेदान्तसारस्तव, श्रीराघवेन्द्रमङ्गलमाला, प्रबोधकलानिधि और वेदान्तचिन्तामणि इत्यादि पूर्वाचार्यकृत निबन्धोंमें ईश्वरके व्यूह विभव आदि भेद कहे गये हैं, इसलिए सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम भी स्वरूपसे नाना हैं ।

समाधान— उक्त शंकाके समाधानरूपसे कहा जाता है कि परमात्मा भगवान् श्रीरामके स्वरूपमें ऐक्य ही है नानात्व नहीं है । उक्त ग्रन्थोंमें सङ्कर्षणादिनानात्व तो सृष्टिकर्तृत्व आदि कार्योंकी भिन्न भिन्न उपाधियोंसे कहा गया है । इसलिए सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम स्वरूपसे एक ही हैं ॥१॥

जीवोंके देवमनुष्यादि भेद प्रकृतिके सम्बन्धसे हैं ।

'यस्यत्मा शरीरम्' (आत्मा अर्थात् जीव जिस ईश्वरका शरीर है ।) इस प्रकारसे श्रुतिमें जीवको ईश्वरका शरीर कहा गया है । अतः समस्त जीव परमात्मा भगवान् श्रीरामसे पृथक् स्थित हो कर नहीं रहते हैं किन्तु ईश्वरके शरीर होनेसे जीव सर्वदा स्वशरीरीरूप भगवान् श्रीरामसे अपृथक्स्थित ही रहते हैं ।

प्रकृतेर्यश्च सम्बन्धः स चोपाधिः प्रकीर्त्तितः ।
उपाधिरहितानां तु जीवानां समरूपता ॥३॥
पृथक् स्थिताश्च जीवा नु श्रीरामात् परमात्मनः ।
नैवं यन्नित्यसम्बन्धो मतो जीवपरात्मनोः ॥४॥
स्वाभाविको न संसारो गुणोपाधिकृतस्तु सः ।
ततो ब्रह्मात्मकोऽहं चेत्यात्मनो धीर्न जायते ॥५॥

जीवोंके सुर असुर मनुष्य तथा पशु आदि भेद उपाधिसे हैं, स्वरूपसे नहीं हैं ॥२॥

जीवोंसे प्रकृतिका सम्बन्ध ही जीवोंके सुरासुरादिभेदोंमें उपाधि कहा गया है। प्रकृतिसम्बन्धरूप उपाधिसे रहित जीवोंके स्वरूप तो एक समान ही हैं। अर्थात् देहादि प्रकृतिसम्बन्ध-रहित सभी जीव ज्ञानाकार होनेसे समानरूपवाले ही हैं ॥३॥

शंका—जीवोंको परमात्मा श्रीरामसे पृथक् स्थित मानने में क्या दोष है?

समाधान— श्रुतिमें जीवोंको सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामका शरीर कहा गया है। यह जीव और परमात्माका शरीरशरीरीरूप सम्बन्ध नित्य है। इसलिये जीवोंको भगवान् श्रीरामसे पृथक् स्थित नहीं मान सकते हैं क्योंकि शरीर कभी भी अपने आत्मा (शरीरी) से पृथक् नहीं रह सकता है ॥४॥

संसार स्वाभाविक नहीं है किन्तु उपाधिकृत है।

जीवात्माओंकी संसारावस्था प्रकृतिसम्बन्धरूप गुणोपाधि-कृत है। इसीलिए ब्रह्मात्मक (ब्रह्म आत्मा वाला) होने पर भी

आत्मनोऽहं सुखीत्यादेः प्रतीतेर्हि विकारिता ।
संसारश्चात्मनस्तस्मात् तात्त्विक इति चेन्न यत् ॥६॥

धर्माः सुखादयश्चान्तःकरणस्य न चात्मनः ।
तदाश्रयत्वमात्रेण नात्मनो हि विकारिता ॥७॥

जीवको "मैं ब्रह्मात्मक हूँ" इस प्रकारकी बुद्धि नहीं होती है। इसीलिए परमात्मासे नित्य सम्बद्ध होने पर भी जीव संसारावस्थाको प्राप्त होता है ॥५॥

जीवात्माका संसार तात्त्विक नहीं है।

शंका– ऊपर कहा जा चुका है कि–"जीवात्माओंकी संसारावस्था प्रकृतिसम्बन्धरूप गुणोपाधिकृत है।" अर्थात् जीवोंकी संसारावस्था नैसर्गिक नहीं है। किन्तु यह बात सत्य नहीं है। इसका कारण यह है कि 'अहं सुखी' 'अहं दुःखी' 'मैं सुखी हूँ' तथा मैं दुखी हूं' इत्यादि प्रतीतिसे आत्मा विकारी है। इसलिए आत्माकी संसारावस्था तात्विक है।

समाधान– इस शंकाके समाधानमें कहा जाता है कि ऐसा नहीं कह सकते हैं क्योंकि सुख दुःख इत्यादिअन्तःकरणके धर्म हैं। ज्ञानकी ही अवस्थाविशेष हैं। सुखादि आत्माके धर्म नहीं हैं। सुखादिका आश्रय होने मात्रसे आत्मा स्वरूपसे विकारी नहीं हो सकता है। इसलिए अत्माकी संसारावस्था गुणोपाधिकृत ही है तात्त्विक (स्वरूपानुबन्धनी) नहीं है ॥६॥७॥

मायया खलु जीवोऽयं सम्बद्धोऽनादिकालतः।
भक्त्या त्वनन्यया रामेऽन्तःकरणनिरोधतः ॥८॥
सत्येक्षणस्य रामस्य दयाब्धेः सकलेशितुः।
दययाऽऽप्नोति रामं हि परमं पुरुषार्थकम्॥९॥

मोक्षका उपाय भक्ति है।

शङ्का– अब शंका यह होती है कि जीवकी यह संसारावस्था कब से हुई है ? और कब निवृत्त होगी ? अर्थात् संसारावस्थासे जीवकी मुक्ति कब होगी ?

समाधान– इस शंका का समाधान किया जाता है कि जीवात्मा अनादि कालसे मायासम्बद्ध है। अर्थात् अनादि कालसे जीव संसारावस्थाको प्राप्त हुआ है।

अब इस बात का उत्तर दिया जाता है कि जीवकी उक्त संसारावस्था निवृत कब होगी ? अनन्य भक्ति के द्वारा भगवान् श्रीराममें अन्तःकरणके निरोध होनेसे सत्यसंकल्प सर्वेश्वर तथा दयाके समुद्र भगवान् श्रीरामकी दयासे जीव परमपुरुषार्थ रूप भगवान् श्रीरामको प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि जब अनन्य भक्ति के द्वारा जीव अपने अन्तःकरण अर्थात् चित्तको भगवान् श्रीराम में निरुद्ध (स्थिर) करता है, तब भगवान् श्री रामजी प्रसन्न होकर अपना साक्षात्कार जीवको कराते हैं, तब यह जीव संसारावस्थासे छूटकर परमपुरुषार्थरूप भगवान् श्रीरामजीको प्राप्त होता हैं अर्थात् मोक्षको प्राप्त हो जाता है। श्रुतिमें कहा भी है कि-

कार्यस्य पुरुषार्थत्वं स्वर्गादेर्निश्चितं बुधैः ।
स्वतः सिद्धस्य रामस्य कथं नु पुरुषार्थता ? ॥१०॥

नैवमनन्यभक्त्या हि प्राप्यते स च राघवः ।
ततो ग्रामादिवन्नूनं पुरुषार्थो भवेच्च सः ॥११॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥

अर्थ– उस परमात्माके दृष्टिगोचर होने पर इस जीवकी हृदय-ग्रन्थि भिन्न हो जाती है, सर्वसंशय छिन्न हो जाते हैं तथा इस जीवके बन्धनकर्त्ता समस्त कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥८॥९॥

शङ्का– ऊपर कहा गया है कि–'जीव संसारावस्थासे छूटकर परमपुरुषार्थरूप भगवान् श्रीरामको प्राप्त होता है,। उस पर शंका होती है कि—विद्वानों ने निश्चित किया है कि साध्यरूप स्वर्गादि ही पुरुषार्थरूप हो सकते हैं । भगवान् श्री राम तो साध्यरूप नहीं किन्तु सिद्धरूप हैं । तब भगवान्‌की पुरुषार्थता कैसे हो सकती है ? ॥१०॥

समाधान–इस पर कहा जाता है कि– वादी उक्तप्रकारसे नहीं कह सकता है। साध्यरूप न होने पर भी सिद्धरूप ग्रामादि पदार्थोंको प्राप्य होनेसे विद्वान लोग पुरुषार्थ मानते हैं । उसी प्रकार सिद्धरूप भगवान् श्रीरामजीके साध्य न होने पर भी अनन्य भक्तिके द्वारा प्राप्य होनेके कारणसे पुरुषार्थ माननेमें कोई दोष नहीं है ॥११॥

मुक्तिर्भवति नो शीघ्रमनन्यभक्तिशालिनः।
यावदायुश्चिरं तावत् 'तावदेव चिरं' श्रुतेः ॥१२॥

प्रारब्धकर्मभोगानन्तर ही भक्तकी मुक्ति होती है।

शंका—वादी शंका करता है कि 'भक्तिसे मुक्ति होती है' यह बात सत्य नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि मुक्तिमें कारण भक्ति होती तो भक्तिके उत्पन्न होनेके अनन्तर शीघ्र ही भक्तकी मुक्ति होनी चाहिए किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता है। भक्तिके उत्पन्न होने पर भी मरणपर्यन्त पुरुषको मुक्ति होती नहीं है इसलिए मोक्षका कारण भक्ति नहीं है।

समाधान—भक्तिके मोक्षकारण होने पर भी भक्तिशाली पुरुषकी भक्तिके -उत्पन्न होते ही मुक्ति नहीं होती किंतु मरने के पश्चात् ही शास्त्रप्रमाणानुसार मुक्ति होती है। इसका कारण यह है कि मुक्ति होने में प्रारब्धकर्म प्रतिबंधक है प्रारब्धकर्मका क्षय तो फलके भोगलेने पर ही होता है। फलके भोगनेसे मुक्तिके प्रतिबंधक जीवनादृष्टरूप प्रारब्धकर्मके नष्ट होने पर मृत्यु होती है, तत्पश्चात् भक्तपुरुषकी मुक्ति होती ही है। श्रुतिमें कहा है कि—"तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य इति।" (छा० ६। १४।२) उस भक्त पुरुषको मुक्त होने में उतना ही विलम्ब है जब तक प्रारब्धकर्मसे उत्पन्न हुए इस शरीरसे मुक्त नहीं हो जाता है। शरीर त्यागनेके पश्चात् तो वह (भक्त) भगवत्प्राप्तिरूप मोक्षको प्राप्त ही हो जाता है। अतः वादीकी उक्त शङ्का सर्व प्रकारसे अनुचित ही है ॥१२॥

नाशाश्लेषौ तु सम्प्रोक्तौ प्रारब्धभिन्नकर्मणाम् ।
ततः कश्चिन्न दोषो हि वर्त्तते भक्तिवर्त्मनि ॥१३॥

शङ्का–वादी फिर शङ्का करता है कि––जिसमें भक्तिकी प्राप्ति होती है उसी जन्ममें भक्ति उत्पन्न होनेके पूर्वकालमें भक्तके द्वारा किए हुए पुण्य और पाप कर्म तथा भक्तिके उत्पन्न होनेके पश्चात भी अनजानमें किए हुए पुण्य और पाप रूपकर्म भी अन्य जन्ममें भोग्यफलोंके हेतुरूप प्रारब्ध बनते हैं। उनके फलोंके भोगे बिना भक्तकी मुक्ति न होगी फिर उस जन्ममें किए हुए कर्म भी प्रारब्ध बनेंगे। उनके फलोंको भोगने के लिए भी शरीर धारण करना ही होगा। इस प्रकार कर्मोंके अन्त न होनेसे भक्तकी मुक्ति कभी भी न होगी। अतः भक्तिमार्ग श्रेष्ठ नहीं है।

समाधान–उक्त शङ्काके समाधानमें कहा जाता है कि–भक्तके प्रारब्धकर्मसे भिन्नकर्मोंके नाश और अश्लेष (असंस्पर्श) शास्त्रोंमें कहे गये हैं, अतः भक्तिमार्गमें कोई दोष नहीं है। अतः वादीकी उक्त शंका सर्वथा अयोग्य है।

तात्पर्य यह है कि––"तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति।" (छा०५।२४।३) (अतः जैसे मूंजकी सींककी रुई अग्निमें पड़ने पर जल जाती है वैसे ही जो उपासक वैश्वानरविद्याके अङ्गरूप इस प्राणाग्निहोत्रको जानता हुआ करता है उस उपासकके सर्वपाप जल जाते हैं। अर्थात् नष्ट हो जाते हैं।) यहाँ पर पापशब्द से पुण्य और पाप दोनोंको लेना चाहिये। इस प्रकार श्रुतिमें उपासकके

भक्ति उत्पन्न होनेके पूर्व इस जन्ममें भक्तद्वारा किए गए प्रारब्धभिन्न पुण्य और पापरूप कर्मों का नाश कहा गया है। इसी प्रकार "यथा पुष्पकरपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति।" (छा. ४।१४।३) (यथा कमलके पत्रमें जल स्पर्श नहीं करते हैं। उसी प्रकार भगवान्‌के उपासक (भक्त) पुरुषमें पापकर्म संस्पर्श नहीं करता है।) यहाँ पर भी पापशब्दसे पुण्य और पाप दोनोंका ग्रहण किया गया है। इस श्रुतिमें भक्ति उत्पन्न होनेके अनन्तर भक्तद्वारा अनजानमें किए गए पुण्य और पाप कर्म उस भक्तको स्पर्श नहीं करते हैं। इस प्रकार श्रुतिमें कथित होनेसे भक्तद्वारा किए गये पुण्य और पापोंके नष्ट तथा असंस्पृष्ट होनेसे वे भक्तके जन्मान्तरके भोगके हेतु प्रारब्ध रूप नहीं बनते हैं।

इस विषयको भगवान् बादरायण (श्रीव्यासजी) ने वेदांतदर्शन के 'तदधिगमाधिकरण' 'इतराधिकरण' तथा 'अनारब्धकार्याधिकरण' इन तीन अधिकरणोंमें अति स्पष्ट कर दिया है।

आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने भी "इतरस्याप्येवमश्लेषः पाते तु" ॥ ४ । १ ॥१४॥ इस सूत्र के भाष्यमें कहा है कि—

"एवंविदुषः उत्तरपूर्वयोः पुण्यपापयोः शरीन्तरहेतुभूतयोर्विद्याप्रभावेणाश्लेषविनाशाभ्यां प्रारब्धकर्मणश्च भोगेनैव क्षयाद्देहपातेऽवश्यं मुक्तिरित्याह—पाते त्विति।" (आनन्दभाष्य ४ । । १ । १४)

अर्थ— इस प्रकार उपासकके (भक्तके) इसी जन्ममें भक्तसे उत्तर तथा पूर्वमें किए गये हुए शरीन्तरके हेतुरूप पुण्य और पापों

सुहृदः साधुकृत्यां च पापकृत्यां द्विषज्जनाः ।
अवरुद्धफलां यान्ति भक्तस्यात्र महात्मनः ॥१४॥

के उपासनाके प्रभावसे अश्लेष (असंस्पर्श) तथा विनाश होनेसे और प्रारब्धकर्मके भोगसे नष्ट होनेसे देहत्यागानन्तर मुक्ति होती है, इस बात को कहते हैं कि—देहके पतन होनेपर ।

अतः "भक्तिसे मोक्ष होता हैं ।" इस भक्तिमार्गीय सिद्धान्तमें कोइ दोष नहीं है अतः वादीकी उक्त शंका अनुचित ही है ॥१३॥

भक्तके सत्कर्मोंके तथा दुष्कर्मोंके फल क्रमशः भक्तके मित्रों तथा शत्रुओंको मिलते हैं ।

शंका—अब शंका यह होती है कि भक्तको तो भक्तिद्वारा मुक्ति हो गई । भक्तके कुछ ऐसे भी कर्म हैं जिनके फल भक्तके प्रबलकर्मों द्वारा अवरुद्ध हैं । भक्तके मुक्त हो जाने पर उन कर्मोंके फलोंको कौन भोगेगा ?

समाधान—उक्तशंकाके समाधानके लिए ही चौदहवें श्लोककी रचना हुई है । उसमें कहा गया है कि—इस लोकमें भक्त महात्माके अवरुद्धफलोंवाले सत्कर्मोंके फलोंको भक्तके सुहृद् (मित्रगण) प्राप्त होते हैं । अर्थात् भक्तके सत्कर्मोंके फलोंको भक्तके मित्रगण भोगते हैं और दुष्कर्मोंके फलोंको भक्तके द्वेषी (शत्रुगण) भोगते हैं । श्रुतिमें कहा भी है कि—

"तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम् ।" अतः पुरुषोंको चाहिए कि वे निन्दा आदि करके भक्तोंके द्वेषी न बनें किन्तु सेवादि करके उनके मित्र ही बनें ॥१४॥

संसृतेर्हेतुरज्ञानमभक्तिर्वेति वा द्वयम् ।
उभाभ्यामतिरिक्तं वा? किं युक्तं हि? कुतश्च तत् ॥१५॥
अभक्तिः संसृतेर्हेतुरन्वयव्यतिरेकतः ।
अन्यथासिद्धमज्ञानमभक्तेः कारणत्वतः ॥१६॥

अभक्ति ही संसारका हेतु है ।

अब विचार किया जाता है कि संसारका हेतु कौन है? अज्ञान है? अथवा अभक्ति है? अथवा अज्ञान और अभक्ति दोनों हैं? अथवा अज्ञान और अभक्ति दोंनोसे अतिरिक्त ही कोई पदार्थ संसारावस्थाका कारण है? इन पक्षोंमें कौन युक्तियुक्त है और क्यों? ॥१५॥

इस प्रकारसे संशय होने पर सिद्धान्तरूपसे कहा जाता है कि अन्वय और व्यतिरेक होनेसे अभक्ति अर्थात् भक्त्यभाव ही संसारका हेतु है। "भक्त्यभावके होने पर (भक्तिके न होने पर) संसार होता ही है।" यह अन्वय है, तथा "अभक्तिके न होने पर अर्थात् भक्ति होने पर संसाराभाव होता है" यह व्यतिरेक (अभाव) है। अतः अभक्ति ही संसार का हेतु है। अतः द्वितीयपक्ष ही अच्छा है।

अतः 'अज्ञान संसारका हेतु है।' यह प्रथम पक्ष ठीक नहीं है। क्योंकि संसारसे नियतपूर्ववर्त्ती अभक्ति ही संसार का हेतु है। अतः अभक्तिके साथ रहनेवाला अज्ञान × अन्यथासिद्ध है। अतः

+ अवश्य माने हुए नियतपूर्ववृत्ति कारणके साथमें रहनेवाले पदार्थको अन्यथा सिद्ध कहते हैं। यथा घटके कारण मृत्तिकाके साथमें रहने वाला रासभ (गधा) घटरूपकार्यके प्रति अन्यथा सिद्ध होता है।

प्रथमश्च तृतीयश्च पक्षौ तस्मान्न सम्मतौ ।
प्रमाणाभावतः पक्षश्चतुर्थोऽपि मतो न हि ॥१७॥
प्रमाणपदवाच्यानि प्रमायाः करणानि तु ।
शब्दो लिङ्गं तथाऽध्यक्षं प्रामाणिकैर्मतानि हि ॥१८॥
प्रमाणलक्षणानां च विस्तरस्तु बुभुत्सुभिः ।
मानरत्नावलीग्रन्थे द्रष्टव्यो मद्विनिर्मिते ॥१९॥
आविर्भावतिरोभावविकारा आत्मनां च ये ।
कर्मतत्फलसंयोगात् ते भवन्तीति निश्चयः ॥२०॥

अज्ञान संसारका हेतु नहीं है । अतः प्रथम पक्ष ठीक नहीं है ।

"अज्ञान और अभक्ति दोनों संसारका कारण है" यह तीसरा पक्ष भी ठीक नहीं है, क्योंकि अज्ञान अन्यथासिद्ध है । इसलिए वह कारण कोटिमें नहीं आ सकता है ।

"अज्ञान और अभक्तिसे अतिरिक्त कोई तीसरा पदार्थ ही संसारका हेतु है,, यह चतुर्थ पक्ष भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसे पदार्थमें कोई प्रमाण नहीं है । अतः 'अभक्ति ही संसारका हेतु है' यह सिद्ध हुआ ॥१६॥१७॥

प्रामाणिक पुरुषोंने प्रमाके करणरूप प्रमाणोंको प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्दके भेदसे तीन प्रकारका माना है ॥१८॥

जिज्ञासु पुरुषोंको चाहिए कि वे मेरे बनाये हुए मानरत्नावलीनामक ग्रन्थमें प्रमाणके विस्तार को देखें ॥१९॥

कर्म और कर्मफलके संयोगके कारणसे ही आत्माओंके आविर्भाव और तिरोभाव रूप विकार होते हैं । ॥२०॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितः ।
भवताद् भक्तिवादोऽयं भक्तिसाम्राज्यवर्धकः ॥२१॥

इत्युपनिषद्भाष्यकार पण्डितसम्राट्-
स्वामिश्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठाचार्य-
प्रणीते भक्तिवादे षष्ठः परिच्छेदः ॥६॥

समाप्तो भक्तिवादः ।

—*—

वैष्णवभाष्यकार स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यके द्वारा रचित यह 'भक्ति-वाद' भक्तिसाम्राज्यका बढानेवाला हो ॥२१॥

*वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता
वादे विजयमाला स्तात् कीर्तिमालाविधायिनी ॥

इत्युपनिषद्भाष्यकारपण्डितसम्राट्स्वामि-
श्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठाचार्यप्रणीता
भक्तिवादस्य विजयमालाख्या व्याख्या समाप्ता ।

---

* वैष्णवभाष्यकार स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यद्वारा विरचित भक्तिवादकी विजयमालानामक यह व्याख्या पुरुषोंको वादमें कीर्त्तिमालाकी विधात्री हो ।

पण्डितसम्राट्स्वामिश्रीवैष्णवाचार्यप्रणीतं

भक्तकल्पद्रुमाष्टकम्

भक्त्या मुक्तिप्रदातारं भक्तरक्षैकदीक्षितम् ।
भक्तकल्पद्रुमं वन्दे श्रीरामं जानकीश्वरम् ॥१॥

भक्तभक्तिपराधीनं स्वाधीनं परमेश्वरम् ।
भक्तकल्पद्रुमं वन्दे श्रीराममवतारिणम् ॥२॥

धर्मद्वेषकरान् हन्तुं धर्मं स्थापयितुं तथा ।
भक्तकल्पद्रुमं वन्देऽवतीर्णं राघवं परम् ॥३॥

सकृदेवप्रपत्त्या च सर्वेभ्योऽभयदायकम् ।
भक्तकल्पद्रुमं वन्दे शरण्यं रघुनायकम् ॥४॥

महापातकहर्त्तारं रामेति नामकीर्त्तनात् ।
भक्तकल्पद्रुमं वन्दे रामं पतितपावनम् ॥५॥

विश्वस्य कारकं चाथ विश्वस्य धारकं विभुम् ।
भक्तकल्पद्रुमं वन्दे रामं विश्वस्य हारकम् ॥६॥

दिव्यदेहं परं ब्रह्म दिव्यलोकाधिनायकम् ।
भक्तकल्पद्रुमं वन्दे रामं दिव्यगुणाम्बुधिम् ॥७॥

उपादानं निमित्तं च सर्वज्ञं जगतोऽस्य हि ।
भक्तकल्पद्रुमं वन्दे श्रीरामं सर्वशेषिणम् ॥८॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
अष्टकं भवतादेतत् सर्वकल्याणकारकम् ॥

अपराधक्षमापनस्तवः

न वेद्मि तेऽर्चनं राम ! न जाने स्तवनं तव ।
सर्वेश्वर ! नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्व मे ॥१॥
त्वज्ज्ञानरहितश्चास्मि त्वत्सेवारहितोऽप्यहम् ।
राघवेन्द्र ! नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्व मे ॥२॥
नास्ति कर्मणि मे शक्तिर्नास्ति भक्तौ च मे गतिः ।
सीतानाथ ! नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्व मे ॥३॥
दयार्हो नास्ति दीनात्मा कश्चिन्मत्सदृशो भुवि ।
दीनबन्धो ! नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्व मे ॥४॥
मत्समो नास्ति पापात्मा त्वत्समो नास्ति पापहृत् ।
हे श्रीराम ! नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्व मे ॥५॥
त्वमेव मे पिता माता वित्तं विद्या बलं तथा ।
कौशल्येय ! नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्व मे ॥६॥
भवाब्धौ पतितश्चास्मि शरणं नास्ति कोऽपि मे ।
दाशरथे ! नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्व मे ॥७॥
त्वत्प्रसादं विना स्वामिन् भवाटव्यां भ्रमाम्यहम् ।
मुक्तिप्रद ! नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्व मे ॥८॥
रक्ष्यस्तेऽहं च शेषश्च त्वदंशो विपथं गतः ।
परब्रह्मन् ! नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्व मे ॥९॥
मनसा त्वां प्रपन्नोऽस्मि कायेन वचसा तथा ।
हे शरण्य ! नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्व मे ॥१०॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितः ।
स्तवोऽयं भवतान्नित्यं सर्वकल्याणकारकः ॥

वेदान्तपीठाचार्यस्वामिश्रीवैष्णवाचार्यप्रणीताः प्रबन्धाः

१	प्रश्नोपनिषदो वैष्णवभाष्यं भाषाभाष्यं च	१–५०
२	मानरत्नावली मयूखसहिता ब्रह्मसूत्रार्थसंग्रहश्च	१–५०
३	प्रमेयपरिशोधिनी सिद्धान्तपञ्चकंच	०–८०
४	सटीकं सिद्धान्तपञ्चकं मूलभक्तमालसहितम्	०–७५
५	अर्थपञ्चकमर्थप्रदीपिकासहितम्	०–८०
६	अधिकरणरत्नमाला प्रकाशसहिता श्रीरामानन्दसिद्धान्तसारश्च	१–७५
७	भक्तिवादो विजयमालासहितः शिक्षाकलानिधिश्च	१–७५
८	श्रौतासिद्धान्तचालीसा हिन्दी अथवा गुजराती टीका	०–३१
९	सिद्धान्तदर्पणम्	श्रीरामानन्दसन्देश में मुद्रित
१०	चालीसापञ्चकम् (हिन्दी) ,,	,,
११	द्वाराचार्यस्तोत्रावली १२–आचार्यस्तुतिचन्द्रिका	,,
१३	कवचनवरत्नम् १४–नित्यधामोपदेशिका	,,
१५	वेदान्तसारस्तवभाष्यम्	यन्त्रस्थ
१६	श्रीवैष्णवालङ्कारभाष्यम् (हिन्दी)	,,
१७	श्रीवैष्णवशिक्षामृतम् (हिन्दी)	,,
१८	स्तोत्रकुसुमाञ्जलिः	अमुद्रित
१९	छन्दःप्रदीपिका ज्योतिःसहिता	,,
२०	श्रीबोधायनकथामृतम् (हिन्दी)	,,

प्राप्तिस्थान– पण्डितसम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य

त्रणदेरी–राममन्दिर शारंगपुरदर्वाजाबाहर अहमदाबाद–२